TO

[...] GROWSE, ESQ., C. I. E.,

[M]AGISTRATE AND COLLECTOR OF BULANDSHAHR,

IN RECOGNITION OF HIS INTEREST

[IN TH]E DEVELOPMENT OF HINDI LITERATURE,

THIS METRICAL HINDI VERSION

[O]F THE CLOUD MESSENGER OF KALIDAS

IS DEDICATED BY THE

TRANSLATOR.

BULANDSHAHR:
24th June 1882.

श्रीयुत
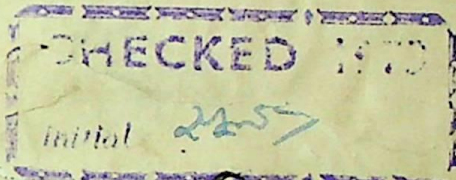
फ्रेड्रिक साल्मन गुरुस् साहिब

एम· ए·, सी· आई· ई·

को

हिन्दी भाषा के प्रवृध्योत्साही जानकर
उल्थाकार ने कालिदास के मेघदूत
काव्य का यह हिन्दी छन्दबद्ध
अनुवाद अर्पण किया।

प्रथम भूमिका।

उपमा अलंकार में कालिदास से बढ़कर अबतक कोई कवि भारतवर्ष में नहीं हुआ और उनके ग्रंथों में मेघदूत भी इसी अलं-कार की उत्कृष्टता के कारण सराहने योग्य गिना जाता है। इस छोटे से काव्य को पढ़कर पढ़नेवाले के चित्तपर अंक सा होजाता है कि विधाता ने कालिदास को कितनी बड़ी कल्पनाशक्ति दी थी। मनुष्य की प्रकृत जानने और स्थान का वर्णन करने और स्वभावका लालित्य दिखाने में यह कवि एकही हुआ है। मेघदूत का अवलो-कन करने से ये उत्तम गुण कालिदास के भली भांति दीखते हैं उन के वाग्विलास की बड़ाई जितनी की जाय थोड़ी है। इस काव्य का प्रकरण संक्षेप से यह है कि कोई यक्ष अपने काम में असाव-धान होगया तब उसके स्वामी कुबेर ने कोप कर उसे बरस दिन के लिये देशनिकाला दिया इस शाप के वश वह अलकापुरी को छोड़ दक्खन में रामगिरि पर्वत पर अकेला जा रहा जब उस पहाड़ में रहते कुछ दिन बीत गये और असाढ़ का बादल उमड़ा उस बिरही को अपनी स्त्री की बहुत सुधि आई मन में सोचा कि प्यारी के पास कुछ कुशल का संदेसा भेजना चाहिये बादल के सामने खड़ा हुआ इसी सोच बिचार में था कि प्रेम की अधिकता में विह्वल हो गया बादल ही को दूत बनाकर अलकापुरी का मार्ग बताने और अपना संदेसा सुनाने लगा रामगिरि से अलका तक जो जो नदी और पहाड़ और तीर्थ और मुख्य मुख्य नगर और देश हैं उनका थोड़ा थोड़ा पता देता गया है पहले ६५ श्लोकों में अलका तक

पहुंचाया है इसीका नाम "पूर्व्वमेघ" है फिर "उत्तरमेघ" के ५१ श्लोकों में अलकापुरी की शोभा और यक्षिणी की दशा वर्णन करके अपना संदेसा बतलाया है। निदान जब बादल से कहे हुए संदेसे का वृत्तान्त कुबेर के कान तक पहुंचा उसने दयालु होकर यक्ष का अपराध क्षमा किया और स्त्री पुरुष का संयोग बरस दिन बीतने से पहले ही करा दिया ॥

हमने हिन्दी छन्दों में यह उल्था अभी पूर्व्वमेघ का किया है परन्तु विचार है कि यदि अवकाश मिला तो उत्तर का भी करें एक भाषा के छन्द को दूसरी भाषा के छन्द में उल्था करना कुछ तो आपही कठिन होता है तिसपर हमारा नियम है कि मूल से उल्था न्यूनाधिक न हो और भाव में भी कुछ विरोध न आवे इसी से कठिनाई अधिक दीखती है फिर भी हम आशा करते हैं कि हमारे इस तुच्छ आरम्भ को देखकर कोई हिन्दी भाषा को अल्पता का दोष न देगा किन्तु विदित होगा कि यह भाषा बड़े विस्तार की है ॥ इतिशुभम् ॥

२४जून १८८२ई० ।

दूसरी भूमिका।

सन १८८२ ई- में मेघदूत के पूर्व्वार्ध का अनुवाद हिन्दी भाषा के छन्दों में करके मैंने प्रतिज्ञा की थी कि यदि अवकाश मिला तो उत्तरार्ध का अनुवाद भी इसी भांति करके प्रकाशित कराऊंगा दैव कृपा से वह प्रतिज्ञा पूरी हुई अब दोनों भाग इकट्ठे छापे जाते हैं और पाठकों की सहायता निमित्त ग्रन्थ के अन्त में एक कोश भी लगा दिया गया है जिस्से मूल के प्रत्येक शब्द का और अनुवाद के असाधारण संस्कृत शब्दोंका अर्थ जाना जायगा॥ वास्तव में यह कोश वही है जो प्रोफ़ेसर विलसन महाशय ने अपने अङ्गरेज़ी मेघदूत के अन्त पर लगाया था परन्तु मैं ने अङ्गरेज़ी के ठौर हिन्दी में अर्थ लिखा है और अनुवाद के कठिन कठिन शब्दों का अर्थ भी कर दिया है॥

२८ फ़रवरी १८८४ ई०

तीसरी भूमिका।

जितनी आशा थी उस्से अधिक मांग इसग्रंथ की हुई इस्से जाना गया कि हिन्दी के रसिकों में इसने पूराआदर पाया पहले जो कुछ दोष रहगये थे अब तीसरी बार के छापे में दूर कर दिए गए हैं॥

आगरा २२ जौलाई १८९३ ई०

लक्ष्मणसिंह
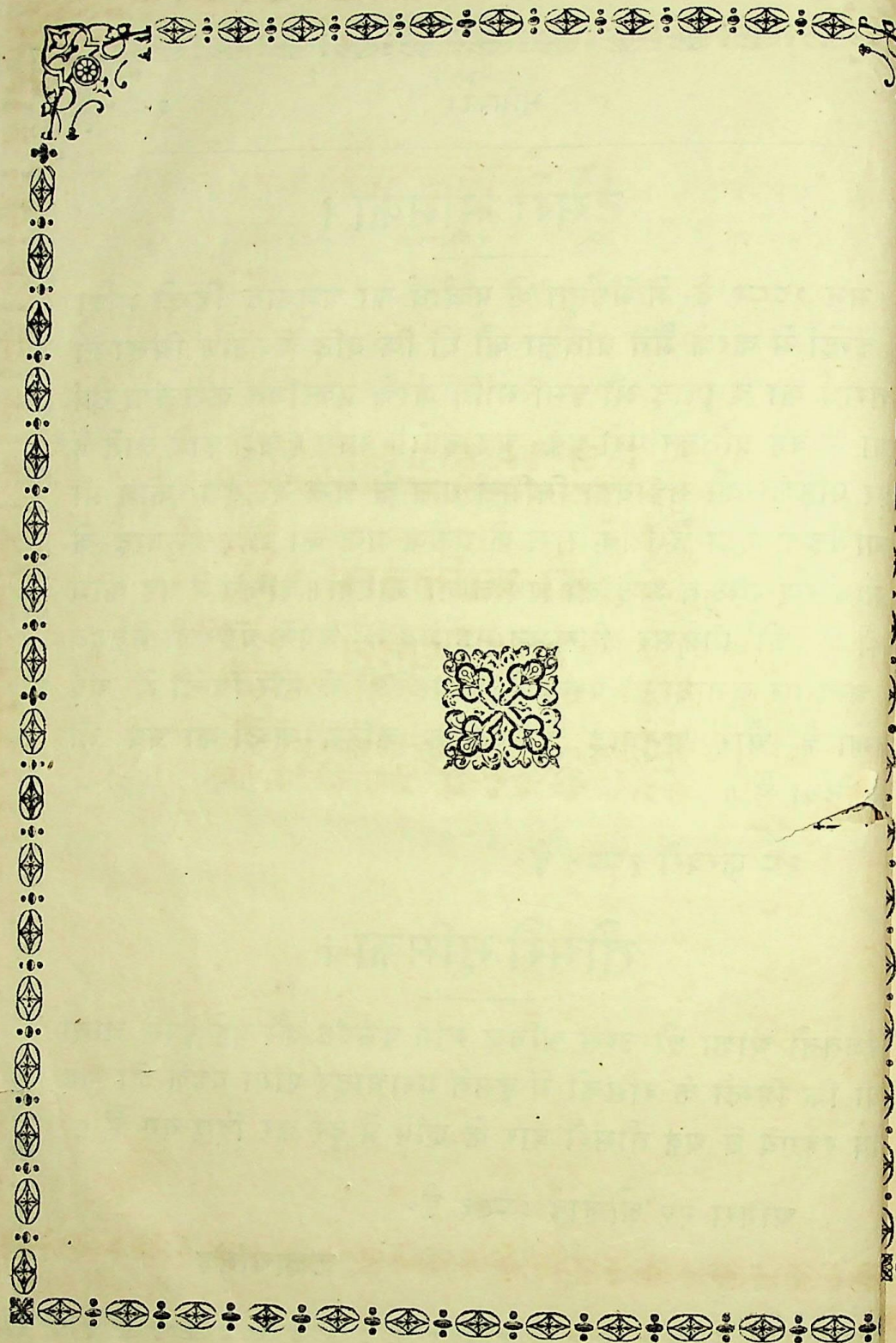
श्री कालिदास
कृत मेघदूत

॥ श्रीः ॥

मेघदूतपूर्व्वार्द्धम्

मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः
शापेनास्तं गमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्त्तुः ॥
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्य्याश्रमेषु ॥ १ ॥
तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ॥
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः केतकाधानहेतो-
रन्तर्व्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ॥

---

१ यक्षः=देवयोनि विशेषः । विद्याधरोऽप्सरो यक्ष रक्षो गन्धर्व्वकिन्नराः
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥

२ प्रथम दिवसे=पाठान्तरे "प्रशम दिवसे" ॥

३ केतकाधानहेतुः=केतक्या गर्भाधानस्य कारणम् ॥

॥ श्रीः ॥

मेघदूत पूर्वार्ध

सवय्या

१ कारज में उनमत्त भए एक जच्छ दई सब खोइ बडाई ।
जीयतें दूर रहे बरसेकलों सोंह बड़ी निज नाथ खवाई ॥
जाय बस्यो गिरि राम के आश्रम रूख घनेन में गेह बनाई ।
जानकी स्नानन पुन्य प्रताप भई जहां नीरन में पवित्ताई ॥
२ बसि ताही महीधर में विरही कितने एक मास बिताइ गयो ।
भुजबन्द गए गिर सोरन के इतनो थकि दूबर गात भयो ॥
फिर लागत मास असाढ़ लख्यो घनशैलपै सोहनो आइ छयो ।
भुककै मनहु गजराजबली गढ़ढावन खेल मचाइ रह्यो ॥
३ तिहिं केतकी फूल फुलावनहार के सन्मुख दासकुवेर गयो ।
उर अन्तर में अंसुवा भरके बड़ी बेर लों सोचत ठाडो रह्यो ॥

---

१ यच्छ एक प्रकार के उपदेवता हैं जिनका स्वामी कुवेर है। एक यच्छ अपने काम में उन्मत्त होकर अपराधी ठैरा कुवेरने कोप कर उसे बरस दिन का देशनिकाला दिया इस्से उसकी सब बड़ाई जाती रही शाप के बश घरबार छोड़ वह रामगिर पर्वत पर जहां बनीवास के समय श्री जानकी जी कुछ दिन रही थीं और उनके स्नानोंसे वहांके जलपवित्र हुए थे शीतल छांहमें घर बनाकर जाबसा ॥

२ उस पहाड़ में रहते जब कुछ महीने बीत गए तो वह बिरह के दुःख में इतना दुबला होगया कि बांह में भुजबन्द भी न ठैरे असाढ़ लगते ही उस ने पहाड़ के सानु पर छाया हुआ बादल ऐसे देखा मानो कोई बड़ा हाथी भुककर गढ़ी का परकोटा ढा रहा है ॥

३ केतकी सावन भादों में फूलती है इस लिये बादल उसके गर्भ का कारण कहलाता है उस बादल के सन्मुख खड़ा होकर यच्छ बहुत बेर तक कुछ सोचता

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेत:
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किम्पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थं
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ॥
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ॥
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

---

४ जीमूतेन = जलधरेण ॥

अर्घः = आपः चीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः
यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्त्तितम् ॥

अपिच

रक्तबिल्वाचतैः पुष्पैर्दधिदूर्व्वाकुशैस्तिलैः
सामान्यः सर्व्व देवानामर्घोऽयं परिकीर्त्तितः ॥

चित कारुठलगे सुखियानहु को न रहै थिर देखत मेघ नयो।
फिर बात कहा उनकी कहिये जिन मीत तें दूर बसेरो लयो॥
४ सांवन आइ समीप लग्यो तब नारि के प्रान बचावन काज।
बादर दूत बनावन कों कुशलात संदेश पठावन काज॥
कूटजफूल नए कर लै मनकल्पित अर्घ बनावन काज।
बोल उठ्यो हंसते मुख ह्वै वह मेघ तें प्रीति बढ़ावन काज॥

घनाचरी

५ घाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह
ऐसो घन कैसे दूतकाज भुगताविगो।
नेह को संदेसो हाथ चातुर पठैवे जोग
बादर कहोजी ताहि कैसे के सुनाविगो।
बाढ़ी उत्कण्ठा जच्छ… बिसरानी सब
वाही सों निहोरयो आनि काज कर आविगो।
कामातुर होतहैं सदाई मति हीन तिन्हें
चेत औ अचेत माहं भेद कहां पाविगो॥

रहा इस पर कवि कहता है कि घटा उमड़ने के समय संयोगियों का भी चित्त ठिकाने नहीं रहता फिर वियोगियों की क्या दशा न होनी चाहिये॥

४ जब सांवन आया यक्ष ने जाना कि यक्षिणी बिरह को ताप में मर जायगी इसलिये उसको पास अपनी कुशल का संदेसा भेजना चाहिये यह सोचकर मन में ठाना कि बादल के हाथ संदेशा भेजूंगा बादल को आदर देने के लिये कुरु बन के फूलों का अर्घ हाथ में ले हंसते मुख प्रीति मिली बातें कहने लगा॥

५ बादल तो धूप और धूंआ और पानी और पवन मिलकर बना है और प्रेम का संदेसा लेजाने को बड़ा चतुर मनुष्य चाहिये परन्तु उस जक्ष को अपने चाव में न सूझा कि बादल क्योंकर संदेसा पहुंचाविगा इस पर कवि कहता है कि काम के सताए पुरुष स्वभाव ही से मूर्ख होतेहैं चेत औ अचेत में भेद नहीं जान सकते

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ॥
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियाया-
स्सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ॥
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
वाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

६ पुष्करावर्त्तकाः = पुष्करा नाम ते मेघा वृहतस्तोयमत्सराः ।

पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥

मघोनः प्रकृतिपुरुषं = इन्द्रस्य प्रधान पुरुषं ॥

७ सन्तप्तानाम् = आतपेन वा प्रवासविरहेण वा संज्वरितानाम् ॥

धनपतिः = कुवेरः ॥

६ पुष्करावर्तक हैं प्रसिद्ध लोकलोकन में
वंश तिनही के नीके तैंने जन्म पायो है ।
इच्छारूप धारन की गति है दई ने दई
मत्वो सुरराजहू ने आपनो बनायो है ।
एते गुन जानि तोपै मङ्गिता भयोहूं मेघ
बंधुन तें दूर मोहि विधि ने बसायो है ।
सज्जन पै मांगनो बिनाहू सरें काज भलो
नीच पै सरे हू काज आछो ना बतायो है ॥

७ तू तौ है सहाई तनताप के सताएन की
भयो हूं वियोगी मैं कुवेरकोप पाइके ।
क्षेम को संदेसो यातें मेरो प्रानप्यारी पास
अलकापुरी में मीत दीजो पहुंचाइके ।
देखनही जोग आछी नगरी बनी है वह
लीनो जक्षराजन सुवास जहां आइके ।
बागन में बाहरें विराजें चन्द्रचूड जाके
नित्तही अटान रहें चन्द्रछटा छाइके ॥

पुष्करावर्तक बादलोंकी एकउत्तम जाति है यक्ष कहता है कि हे मेघ मैं जानता हूं तू इसी जातका है और यह भी जानता हूं कि जैसा रूप चाहे तू धर सकता है और इन्द्र का सखा भी तू है इसलिये तुझसे याचना करने में मैं शंका नहीं करता क्योंकि सज्जन पुरुषसे याचना पूरी नहो तौभी अच्छी है परन्तु नीचसे पूरी होजाय तौभी अच्छी नहीं॥ यक्ष बादल से कहता है कि तू सदां दुःखियों का सहाई है और मैं कुवेर के शापवश दुःखी हूं इसलिये तू मेरा संदेसा मेरी प्यारीके पास अलकापुरी में पहुंचा दे वह सुन्दर नगरी देखने योग्य है यक्षनायक उस में बसते हैं बागों में शिवजी ठैरते हैं उनके मस्तक के चन्द्रमा की चांदनी से अलका के महल सदां चमकते रहते हैं ॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ॥
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ॥
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

कामाता ।ऽ प्रष्टातक्षपणास्म ननाचतनष ॥ ९ ॥

सद्य:पात प्रणाय हृदय ।वप्रया।ग रुणाद्ध ॥ १० ॥

८ वर्हिणस्थातकाश्चाषा ये च पुंसाङ्गिताः खगाः ।
भृगा वा वामगा दृष्टाः सैन्यसम्पद्दलप्रदाः ॥
सगर्व्वः = सहर्षं ॥

६ पुष्करावर्तक हैं प्रसिद्ध लोकलोकन में
वंश तिनही के नीके तैंने जन्म पायो है।
इच्छारूप धारन की गति है दई ने दई
मन्त्री सुरराजहू ने आपनो बनायो है।
एते गुन जानि तोपै मङ्गिता भयोहूं मेघ
बंधुन तें दूर मोहि विधि ने बसायो है।
सज्जन पै मांगनो बिनाहू सरें काज भलो
नीच पै सरे हू काज आछो ना बतायो है॥

७ तू तौ है सहाई तनताप के सताएन कौ
भयो हूं वियोगी मैं कुवेरकोप पाइके।
छेम कौ संदेसो यातें मेरो प्रानप्यारी पास
अलकापुरी में मीत दीजो पहुंचाइके।
देखनही जोग आछी नगरी बनी है वह
[illegible]
जीवति दिन गिनती करति पतिभरता चितलाइ॥

८ पवनके मार्गमें जाते हुए तुझे परदेसियों की स्त्रियां अपने खुले बाल सुखसे हटाहटा कर बारबार देखेंगी (खुले बाल इस लिये हैं कि जिस स्त्री का पति परदेश गया हो उसको अलक बांधना वर्जित है) बादल देखकर उन्हें भरोसा होगा कि अब हमारे पति घर आवेंगे क्योंकि बरसाकालमें अपनी स्त्रीको विरहके दुःखमें छोड़ना कोई नहीं चाहता ऐसा मन्दभागी तो मैं ही हूं कि पराधीन होकर अपना सब सुख खो बैठा हूं॥

९ मन्द मन्द पवन चलती है बाएं पर पपीहा बोलता है बगली आकाशमें पंक्ति बांधकर आई हैं मानों तुझे गर्भका दाता जान आदर देती हैं ये अच्छे अच्छे शगुन तेरे लिये हैं॥

१० इन शगुनों से निश्चय है कि मार्ग में कुछ विघ्न तुझे न होगा और तू अपनी भावज

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ॥
कस्सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्व्वः ॥
गर्भाधानक्षमपरिचयं नूनमाबद्धमाला-
स्सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥ ९ ॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ॥
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

९ बर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसाह्विताः खगाः ।
मृगा वा वामगा दृष्टाः सैन्यसम्पत्फलप्रदाः ॥
सगर्व्वः = सहर्ष ॥

८ वातपन्थ जात तोहि नारी परदेसिन की
देखेंगी बार बार अलकें कर सों उठाइ।
बालम के आवन की आसा उर लाइ लाइ
धीरज धरेंगी नेक चिन्ता जियसों बिहाइ।
आएं तो समीप कोई नारि कों बिसारे नाहिं
बिरहाबिथा में नर जौपै अपनी बसाइ।
ऐसो मन्दभागी मैं हूं दूसरो न और होइ
पराधीनवृत्ति हेत बैठो सुख हूं नसाइ॥

दोहा

९ मन्द मन्द मारुत बहै जैसो तोहि सुहाइ।
हरषित यह चातक मधुर बाएं बोल्यो आइ॥
बगुली हू नभ में सुभग आईं बांधि कतार।
गरभदान समरथ समझि तोहि देन मनुहार॥
१० मग में रुकि न तू कहूं लखि है भौजी जाइ।
जीवति दिन गिनती करति पतिभरता चितलाइ॥

---

८. पवनके मार्गमें जाते हुए तुझे परदेसियों की स्त्रियां अपने खुले बाल मुखसे हटाहटा कर बारबार देखेंगी (खुले बाल इस लिये हैं कि जिस स्त्री का पति परदेश गया हो उसको अलक बांधना वर्जित है) बादल देखकर उन्हें भरोसा होगा कि अब हमारे पति घर आवेंगे क्योंकि बरसाकालमें अपनी स्त्रीको विरहके दुःखमें छोड़ना कोई नहीं चाहता ऐसा मन्दभागी तो मैं ही हूं कि पराधीन होकर अपना सब सुख खो बैठा हूं॥

९. मन्द मन्द पवन चलती है बाएं पर पपीहा बोलता है बगली आकाशमें पंक्ति बांधकर आई हैं मानों तुझे गर्भका दाता जान आदर देती हैं ये अच्छे अच्छे शगुन तेरे लिये " ॥

१० इन शगुनों से निश्चय है कि मार्ग में कुछ विघ्न तुझे न होगा और तू अपनी भावज

कर्त्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ॥
आकैलासाद्विसकिशलयच्छेदपाथेयवन्त-
स्सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसास्सहायाः ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ॥
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ॥
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपयुज्य ॥ १३ ॥

११ उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् = शिलीन्ध्र एव छत्रं यस्याः तां ॥
विसकिशलयच्छेदपाथेयवन्तः = मृणालाग्राणां छेदैः शकलैः पाथेयवन्तः ॥

नेही हिरदो नारिको कोमल जैसो फूल ।
बिरह मांहि आसा करति ताहि कछुक दृढ़मूल ॥

११ छत्रवती छितिकों करति उच्छलिन्ध्र उपजाइ ।
सो गरजन तेरी सुनत राजहंस हुलसाइ ॥
मानसरोवर चलन कों कमलनाल लै पाथ ।
उडि हैं धुर कैलास लों गगनपन्थ तो साथ ॥

१२ मांगि सीख गिरितुङ्ग पै अब मीतहिं भरि अङ्क ।
पावन रघुपति चरन सों अङ्कित जाको लङ्क ॥
जब जब तू यातें मिलत बहुत दिनन में आइ ।
प्रीति प्रगट तो में करत तातो भाप उठाइ ॥

कुंडलिया

१३ गैल बताऊं मेघ अब जिहिं चलि पावे चैन
फिर सुनियो सन्देश मम कानन अति सुखदैन

अर्थात् मेरो स्त्री को जीतो पावेगा वह मेरे शाप के दिन गिन्ती होगी स्त्री के कोमल हृदय को विरह में आसा ही कुम्हलाने से बचाती है ॥

११ बादल की गरजसे उच्छलींध्र अर्थात् खुमी उपजती है मानो पृथ्वी को छत्रमिलता है ऐसी गरज सुनकर राजहंसोंको मानसरोवर जाने का उत्साह होगा मार्गमें खाने के लिये कमलनाल का पाथ अर्थात् तोसा लेकर कैलास तक वे तेरे साथ आकाश में उड़ते हुए जायंगे ॥

१२ अब तू इस ऊंचे पहाड़से भेट कर और सीख मांगकर अलकापुरीको चलदे इसकी पीठपर श्रीरामचन्द्रके पुनीत चरनोंके चिन्ह हैं और यह तेरा पुराना मित्र है बरस बरसदिन पीछे जब तू इससे मिलता है यह तत्तीभाप निकालता है मानो प्रीतिके तत्ते आंसू गिराता है (तत्ते आंसू प्रीतके और ठंडे शोकके होते हैं) ॥ मेघ की और पर्वत की आपस में सहज मित्रता कवि लोग बांधा करते हैं आगे इस मेघदूत में कई जगह यह मित्रता दिखाई जायगी ॥

१३ हे मेघ अब मैं पहले तुझे अलकापुरी का मार्ग बताता हूं जिसमें चल कर तू सुख

अद्रेः शृङ्गं वहति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोच्छ्रायश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ॥
स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेच्यमेतत्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य ॥
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
वर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

---

१४ सरसनिचुलात् = आर्द्रस्थल वेतसाः यस्मिन् तस्मात् ॥
दिङ्नागानां = दिग्गजानां ॥
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पदन्तः सार्व्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥
अवलेपान् = गर्व्वान् ॥
१५ आखण्डलस्य = इन्द्रस्य ॥

कानन अति सुखदैन थके वा मग में जब तू
चलियो धरि धरि पांव शिखर ऊंचिन पै लव तू
भूख लगे सोता मिलें उथरे बरु बिनमैल
पी तिन को पानी तुरत लीजो अपनी गैल ॥

१४ जात तोहि ऊपर निरखि कहि हैं सीस उठाइ
मुग्धा सिद्धबधू चकित आपस में बतराइ
आपस में बतराइ बड़ो अचरज को लेखो
पवन उड़ाए जात खण्ड परवत को देखो
निचुलसरस यह भूमि तजि अब उत्तर चलि भ्रात
मेटत मद दिग्गजन के नभमारग में जात ॥

१५ सोहत पूरब ओर यह रतनजाल अनुमान
निकसत बांबी तें भलो इन्द्रचाप कचदान
इन्द्रचाप कचदान जासु मिलि तो तन कारो
पावत है छबि अधिक लगत नैनन कों प्यारो

पावेगा फिर अपना संदेसा सुनाऊंगा उस मार्ग में जो तू थक जाय तो पहाड़ोंकी शिखरपर पांव धरकर बिश्राम करता हुआ चलियो और भूख लगे तो उथले सोतों का निर्मल जल पीलीजो ॥

१४ आकाश में तुझे जाता हुआ देखकर सिद्धों की मुग्धा स्त्री आपस में चकित सी होकर कहेंगी कि क्या यह परवत का टुकड़ा है जिसे पवन उड़ाए लिये जाता है (सिद्ध एक प्रकार के देवता हैं जो आकाश में रहते हैं) अब तू इस आले स्थान से जहां बेत उपजते हैं उत्तरको चल और दिग्गजों को जो अपने बड़े शरीरका घमंड है वह घमंड उनका तुझे देख कर मिट जायगा क्योंकि वे जानेंगे कि यह हमसे भी बड़ा आया ॥

१५ लोकप्रसिद्ध बात है कि इन्द्रधनुष सांपकी बांबी से निकलताहै ऐसाही कालिदासा भी कहते हैं और उपमा देते हैं कि काला बादल रंग बिरंगे धनुष से वह शोभा

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥
सद्यस्सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित् पश्चाद्व्रज लघुगतिः किञ्चिदेवोत्तरेण ॥ १६ ॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ॥
नक्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किम्पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ॥
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवश्शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

१६ त्वय्यायत्तं = त्वयि आयत्तं = ते अधीनं ।
भ्रूविकारानभिज्ञैः = भ्रुकुटिविलासानामज्ञातृभिः ॥

१७ वनोपप्लवं = दवाग्निं ॥

१८ अमरमिथुनप्रेक्षणीयां॥ खेचरदम्पतीदर्शनीयां ॥

मोरचन्द्रिका सङ्ग सुभग जैसे मन मोहत
गोपवेष गोविन्द बहुत स्यामल तन सोहत ॥

१६ करके दृग ऊंचे लखें भोरे भरेपियार
ग्रामबधू तुहि जानके खेतीफल दातार
खेतीफल दातार पहुंचियो मालभूमि वर
नए जुते जहं खेत सुगन्धित होइं अधिकतर ॥
कछु पच्छिम दिश पलटि शीघ्रगति तन में धरके
चलियो जलधर मीत फेर उत्तर मुख करके ॥

सोरठा

१७ अम्रकूट तनताप मेटी तैं बहुधा बरसि ।
सो धरि है सिर आप तो मारग के थकित कों ॥
मीतहिं आएं द्वार बिमुख होत नहिं नीचहू ।
सुमिरि प्रथम उपकार ऊंच बिमुख कब हू सके ॥

१८ रह्यो चहूंदिश छाइ पके आम बन शैल वह ।
ता सिर जब तू जाइ बैठै चिक्कनचिकुर रंग ॥

पावेगा जो मोरचन्द्रिका से श्रीकृष्ण का श्याम शरीर पाता था ॥

१६ हे मेघ तुझे गांव की स्त्रियां यह जानकर कि खेती का फल तेरेही आधीन है नेह भरी आंखों से जो भौंह चलाना नहीं जान्ती हैं देखेंगी तू मालदेस को जाना जहां नए जुते खेतों से सुहावनी सुगंध निकलती होगी फिर थोड़ासा पच्छिम की ओर पलटकर तुरन्त उत्तर को चलदीजो ॥

१७ तैंने मेह बरसाकर बहुत बार अम्रकूट पर्वत की ताप मिटाई है इस लिये जब तू मारग का थका हुआ उस के पास पहुंचेगा वह तुझे अपने सिर पर रख लेगा क्यों कि जिसने कुछ उपकार पहले कर लिया हो उसे द्वार पर आए नीच भी आदर देते हैं फिर ऊंचों का तो क्या कहना है ।

१८ वह पहाड़ पके आंबों से छाया हुआ पीला दीखता होगा उस की शिखर पर जब तू चिकनी वेनीके समान काला जाकर बैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो पृथ्वीके

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमांश्चित्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वच्यति श्लाघमानः
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति नचिरेणोपकारो महत्सु ॥ १९ ॥

स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त्तं
तोयोत्सर्गाद्द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ॥
रेवां द्रच्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥ २० ॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ॥
अन्तस्सारं घन तुलयितुं नानिलश्शच्यति त्वां
रिक्तस्सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २१ ॥

---

१९ नैदाघम् = निदाघर्तुभवम् ॥ (निदाघः ग्रीष्मः) ॥

२० रेवा = नर्म्मदा ॥
रेवा तु नर्म्मदा सोमोद्भवा मेखलकन्यका इत्यमरः ॥
भक्तिच्छेदः = रेखारचना ॥

२१ तिक्तैः = सुगन्धिभिः ॥
वासितं = सुरभितं ॥
प्रतिहतरयं = प्रतिरुद्धो वेगोयस्य तत् ॥

तुरत लहै छबि सोइ जोग देवदम्पति लखन।
मनहु स्यामता होइ गोरे भूमिउरोज बिच ॥
१९ थक्यो पन्थ चलि गात निकट रहै जब जाय तू
चित्रकूट विख्यात ऊंचे सिर तुहि धारिहै ॥
करियो धारासार हरन तासु ग्रीषमअगिनि
सज्जन संग उपकार फलत बिलम्ब न कछु करे ॥
२० बिलमि तहां कछुबार विहरति जहं बनचर वधू
करियोधारासार फिर द्रुतगति मग लांधियो ॥
लखियो रेवा जाइ बिन्ध्यशिलन पै यों बहै
मानहु दई रचाइ गजतन रजरेखा बिशद ॥

चौपाई

२१ लै चलियो वा नदि के नीरा। जम्बुनीकुञ्जन रुकि भए धीरा ॥
वन हाथिन जिन में मद त्यागे। अधिक सुगंधित तिहिं हितलागे॥
अन्तर जब तेरो भरि जाई। पवनहु रोकि न तोहि सकाई ॥
रीते सबहि तुच्छ जग माहीं। बिन पूरनता गौरव नाहीं ॥

पयोधरमें स्यामता है इस शोभा को देवता अपनी स्त्रियों सहित देखके प्रसन्न होंगे॥
१९ चित्रकूट पर्वत भी तुझे थका देख कर अपने सिरपर उठालेगा फिर तू तुरन्त पानी बरसाकर उसकी निदाघ अग्नि को मिटावेगा क्योंकि सज्जनके साथ जो भलाई की जाय उसका फल तुरन्त मिलता है (निदाघ=जेठ असाढ़ की धूप)॥
२० जिसकी कुंजों में बनवासी लोगों की स्त्रियां बिहार करती हैं उस पहाड़ में थोड़ी बेर ठैर कर और जल बरसने से शीघ्रगति होकर तू मार्ग उलांघियो आगे तुझे रेवा (नर्मदा) नदी मिलेगी जो बिन्ध्याचल में बहती हुई दूर से ऐसी दीखती है मानो हाथी के शरीर में स्वेत मिट्टी की लकीरों से सिंगार किया है॥
२१ उस रेवा नदी का जल जामन के रूखों में रुक रुक कर धीरे चलता है और बनके हाथी उसमें न्हाते हैं उनके मद से सुगन्धित है उसी जलको पीकर तू आगे चलियो जल पीनेसे तू भारी होजायगा इसलिये मार्गमें तुझे पवन न रोक सकेगी॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केशरैरर्द्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ॥
दग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचस्सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २२ ॥

अम्भोबिन्दुग्रहणरभसांश्चातकान् वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्द्दिशन्तो बलाकाः ॥
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥ २३ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्व्वते पर्व्वते ते ॥
शुक्लापाङ्गैस्सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २४ ॥

---

२३ वीक्षमाणाः = कौतुकात् पश्यन्तः ॥

२४ ककुभसुरभौ = अर्जुन सुगन्धिनि ॥
केकाः = केका वाणी मयूरस्य ॥
प्रतुय्द्यातः = कृतातिथ्यः ॥

२२ देखि कदम्ब सुमन मन भाए। हरित स्याम मकरन्द सुहाए॥
कूलन माहिं निरखि कन्दलिका। नवकुसुमित बहुसुन्दर कलिका॥
दावानल भसमित कानन में। भूमि सुगन्ध सूंघि मुद मन में॥
मोर जलद तुहि आदर देहैं। आगे उडि उडि पन्थ दिखैहैं॥
२३ सिद्ध निरखिहैं तो सँग आवत। चातक बारिबूंद रट लावत॥
बगपांती एकसँग लखि लैहैं। गिनती कर कर तियन दिखैहैं॥
सो तिय सुनत घोर घन तेरी। कांपि चौंकि अकुलायं घनेरी॥
अङ्ग लगाय बलम सुख पावें। बहु भांतिन तेरे गुन गावें॥
२४ यदपि मम प्यारी हित लागी। तू चहै चलन मन्दगति त्यागी॥
तदपि डरों कहुं बिलमि न जाई। ककुभसुगन्धित शैलन भाई॥
सुनि आदरयुत बोल शिखिन के। सजल नैन कोए सित जिनके॥
काविधि तुरत गमन होइ तेरो। इहिं शङ्का व्याकुल मन मेरो॥

२२ तेरे बरसने से कदम्बोंमें काले पीले रङ्गोंके फूल लगेंगे कछारोंमें कन्दली कल्याइंगी दावानल से जलेहुए बनमें सुगन्ध उठेगी इनको देख और सूंघकर मोर मगन होंगे तेरे आगे उड़ उड़ कर मार्ग दिखावेंगे (बादलकी और मोर की सहज मित्रता है)॥

२३ सिद्ध जात के देवता (जो आकाश में रहते हैं) तेरे साथ आते हुए मेह की बूंद का रस लेनेवाले पपीहों को बड़े चावसे देखेंगे और बगलों की पंक्ति को गिन गिन कर अपनी स्त्रियों को दिखावेंगे तेरी गरज से डरती चौंकती हुई उन्हीं स्त्रियों को कंठ लगाकर तेरे गुन गावेंगे॥

२४ हे मेघ तू मेरी प्यारी के पास संदेसा पहुंचाने को यद्यपि शीघ्र जाना चाहेगा फिर भी मुझे डर है कि पहाड़ों में ककुभ (अर्जुन) की अच्छी सुगन्ध सूंघकर तू कहीं ठैर न जाय और यहभी डर है कि श्वेत और सजल कोयोंवाले मोरोंकी आदरभरी कूक सुनकर तेरा तुरन्त चलना क्योंकर होगा॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
र्नीडारंभे गृहबलिभुजामाकुलग्राम चैत्याः ॥
त्वय्यासन्ने फलपरिणतिश्यामजम्बूवनान्ता-
स्सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २५ ॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमतिमहत् कामुकत्वस्य लब्धा ॥
तीरोपान्तस्तनित सुभगं पास्यसि स्वादुयुक्तं
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्म्मि ॥ २६ ॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ॥
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २७ ॥

---

२५ नीडः = पक्षिगृहं ॥
　दशार्णाः = नाम देशः ॥

२६ फलमतिमहत् = "कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यत" इति भावः ॥

२७ नीचैराख्यं गिरिम् = नीचगिरिम् ॥

४२,५ ८५ ~~६४/३२~~ ६४/१५८

२५ पहुंचि दशारन जब तू जाई। कछु दिन हंस बसें तहं भाई॥
कलित केतकी जहं मन मोहैं। उपवन सौम पराडुरंग सोहैं॥
नीड़ समय पंछी वहु आवैं। रूख्यन माहिं कलोल मचावैं॥
स्याम वरण सुन्दर दुतिमन्ता। जमुनीफल पकिभे बनअन्ता॥
२६ विदिशा नाम तहां रजधानी। देश देश विख्यात बखानी॥
ता ढिंग पहुंचि जबहि तू जैहै। रसविलास को अतिफल पैहै॥
वेत्रवती तट गरजत धीरा। लीजो मधुर तरंगित नीरा॥
मनहुं कुटिल भ्रकुटीयुत मुखतें। अधरामृत लीनो अति सुखतें॥

सवय्या

२७ है विदिशा ढिंग नीचगिरी करियो बिसराम तहां घन जाइके॥
तोहि मिलें लखिहै पुलकात सौ आछे कदम्ब के फूलन छाइके॥
वेस्यन के अंग राग की गन्धि गुफान तें व्यारि के संग उड़ाइके॥
देहै बताइ विहार करें यहां नागर छैल नए नए आइके॥

---

२५ तेरे पहुंचने से दशारन देश में कुछ दिन हंस ठैरेंगें उस देश में केतकी वहुत होती हैं उन के फूलों से बागों की सोभा पीली दीखेंगी गांव निकट के रूखों में घोंसला बनाने के दिनों पखेरू कलोल करेंगे जामुन के पके फलों से बन के किनारे स्याम दिखाई देंगे॥

२६ दशारन की राजधानी विदिशा (अर्थात भेलसा) है जहां वेत्रवती नदी बहती है तू मन्द मन्द गर्ज कर उस तरंगित नदी का जल ऐसे लेगा मानो भौंह चढ़ाती हुई नाइका का अधरामृत नायकने लिया और यही रसबिलास का उत्तम फल है (कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते)॥ कवि लोग मेघ को नायक और नदी को नाइका बांधा करते हैं॥

२७ विदिशा के निकट नीचगिरी नाम पर्वत है उसपर तू विश्राम लीजो वह फूले हुए कदम्बों से ऐसा दीखेगा मानो तेरे मिलाप से पुलकित है उसकी गुफाओं से वेश्याओं के अंगराग की सुगन्धि निकलती है इस से जाना जायगा कि नगर के छैला यहां आ आकर विहार करते हैं॥

विश्रान्तस्सन् व्रज नगनदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ॥
गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावी मुखानाम् ॥ २८ ॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः ॥
विद्युद्दामस्फुरणचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसि लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २९ ॥

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्ची गुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्त्तनाभेः ॥
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरं सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ ३० ॥

---

२८ पुष्पलावी = पुष्पावचायिका ॥

२९ उज्जयिनी स्याद्विशालाऽवन्ती पुष्पकरण्डिनी ॥

३० निर्विन्ध्या = नाम नदी ॥
विभ्रमः = विलासः ॥

२८ ठैरके लैक तहां चलियो बरसावत नीर नई बुंदियान तें
सींचत नाग नदी तट बागन छाइ चमेली रहीं कलियान तें
दै छिन छांह को दान सखा करियो पहचान तू मालिनियान तें
कान के फूल गए जिनके कुम्हलाइसे पोंछत स्वेद मुखान तें ॥
२९ तो दिश उत्तर चालनहार के मारग केतोइ फेर परे किन
वा उज्जयनि के आछे अटा परसे बिन तू चलियो कितहू जिन
चंचल नैन वहां अबलान के बिज्जुछटा चकचौंधे करै छिन
जो न लख्यो उन नैनन तू हकनाहक देह धरेही फिरै गिन ॥
३० रस बीच में लैचलियो निरबिन्ध को जो मग तेरो निहारती है
कटि किंकिनि मानो बिहंगम पांति तरङ्ग उठै भनकारती है
मन रञ्जन चालि अनोखी चलै अरु भौंर की नाभि उघारती है
बतरान है मीतसों आदि यही तिय बिभ्रम मोहनी डारती है॥

२८ वहां थोड़ी वेर ठैर कर तू नग नदी तीर के बगीचोंमें चमेलियों को अपनी नई बूंदों से सींचता हुआ चलियो दुपहरी में मालिन फूल बीनती होंगी मुख का पसीना पोंछते पोंछते कानोंपर रक्खे हुए फूल के गहने उनके कुम्हला गए होंगे तेरी छाया पड़ने से सुख पाकर वे तेरा गुन मानेंगी ॥
२९ तू अलकापुरी को जानेवाला है वह उत्तर दिशा में है उज्जयनि होकर जायगा तो कुछ फेर पड़ेगा परन्तु फेर पड़े तो पड़े उस नगरी को देखे बिना मत रहियो वहां स्त्रियों के नेत्र बड़े चंचल हैं तेरी बिजली से चोंधकर अधिक शोभायमान होजायंगे जो उन नेत्रों ने तुझे न देखा तो तेरा देह धरनाही अकारथ है ॥
३० मार्ग में निरविन्ध्या नदी मिलेगी उसके तट पर जो हंसों की पंक्ति बैठी है सोई मानो उसकी कमर की तागड़ी है हंसों का बोलना है सोई तागड़ी के घुंघुरुओं की भनकार है उस की चाल भी अनोखी है अर्थात चक्कर खाकर चलती है और उस में भंवर पड़ता है सोई मानो तुझे ललचाने को वह अपनी नाभ दिखाती है क्योंकि स्त्री का हावभावही प्रीतम के साथ पहला वार्त्तालाप होता है ॥

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिः शीर्णपर्णैः ॥
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ ३१ ॥

प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धाँ
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ॥
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥ ३२ ॥

---

३१ सिन्धुः = नाम नदी ॥
व्यञ्जयन्ती = प्रकाशयन्ती॥

३२ अवन्तीम् = उज्जयिनीम् ॥
उदयन = नाम राजा वत्सराज इति प्रसिद्धः ॥
पूर्व्वोद्दिष्टां = पूर्व्वोक्तां ॥
श्रीविशालां = सम्पत्तिमहतीम् ॥
विशालां पुरीं = उज्जयिनीम् ॥

३१ जल सूखत सिन्धु भई पतरी तनवेनीसरीको दिखावती है
तटरूखन तें झरें पात पके छवि पीरी मनो अंग लावती है
धरि सोहनो रूप बियोगिनि को वह तोमें सुहाग मनावती है
करियो घन सो बिधि वाके लिये तनछीनता जोकि मिटावती है

घनाचरी

३२ ख्यात है अवन्ती जहां केतेक निवास करें
पण्डित जनख्या उद्दयन की कथान के।
जाइके तहां प्रवेश कीजो वा विशाला बीच
देखलीजो शोभासाज सकल जिहान के।
भूमितें गए जो नर देवलोक भोगिवे कों
करि करि काज़ बड़े धर्म औ प्रमान के।
तेई फेरि आए संग सारभाग स्वर्ग ल्याए
प्रबल प्रताप मनो शेष पुन्नदान के॥

---

३१ आगे सिन्धु नदी मिलेगी जो तेरे लिये वियोगिनी का रूप धर रही है जेठ मास बीत चुका है इस से सूखकर पतली हो गई है मानो वियोग की वेनी बांधी है तट के रूखों से पीले पत्ते गिरते हैं उनसे रंग पीला दीखता है जैसा वियोगिनीका होता है तू उसे अपना रस (जल) दीजो जिस से उस की दुर्बलता मिट जाय॥

३२ उदयन नाम एक वड़ा प्रतापी राजा उज्जयन में हुआ है उस की वहुत सी कथा प्रसिद्ध हैं इन कथाओं के जाननेवाले पंडित अवन्तीमें बहुत बसते हैं उसी नगरी में विशाला नाम मुख्य स्थान है जहां पहुंचकर तू सब जगत की शोभा देख लेगा वह ऐसो उत्तम है मानो स्वर्ग का एक मुख्य टुकड़ा है जिसे अच्छे लोग स्वर्ग भोगकर अपने बचे हुए पुन्यों के प्रताप पृथ्वीपर ले आए हैं॥

दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ॥
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूल-
श्शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३३ ॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवन शिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ॥
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखिन्नान्तरात्मा
त्यक्त्वा खेदं ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३४ ॥

३३ शिप्रा = नाम नदी ॥

३४ जालोद्गीर्णैः = गवाक्ष मार्गनिर्गतैः ॥

केशसंस्कार धूपैः = वनिता केश वासनार्थैर्गन्धद्रव्य धूपैः ॥

३३ प्रातकाल फूले नित्त कंजन तें भेटि भेटि
रंजन हिये की होत गन्ध सरसानो है।
दीरघ करत मदमाते बोल सारस के
सुरन रसीले सुने कान सुख मानो है।
एते गुन साथ तात सिपरा नदी की वात
पीतम समान वीनती में अति स्यानो है।
सुरतग्लानि हरत सोई तहां नारिन की
गातहितकारी जात याहीतें बखानो है॥

३४ उड़त झरोखन तें केशगंध धूप वहां
होइ अंग तेरो पुष्ट मेघ वाहि पीजो तू।
देखि तोहि बार बार नाचेंगे घरेलू मोर
प्रीति सतकार मीत सोई मानलीजो तू।
सोंधे होइ फूलनतें मन्दिर अवन्तिका के
चैन थके गातन कों नैक तहां दीजो तू।
ललित तियान पांव रंजित महावर तें
अंकित अटान जाइ बिसराम कीजो तू॥

---

३३ वहां सिपरा नदी का पवन प्रातःकाल खिले कमलों से मिलकर सुगन्धित होता है सारसों (रसिकों अथवा हंसों) की कूक बढ़ाता है स्त्रियोंके शरीर से लगकर पसीने सुखाता है ये गुन उस में ऐसे हैं जैसे चतुर नायक में होते हैं॥

३४ अवन्ती के महलों में स्त्रियां अपने केशों को अगर चन्दन इत्यादि के धुऐं से सुगन्धित करती हैं वही धुआं झरोखें से उड़ता है उसे तू पीलेगा तो तेरा शरीर पुष्ट हो जायगा पालतू मोर तुझे आदर देने के लिये नाचेगें वहां फूलों से महल महक रहे हैं चतुर स्त्रियोंके महावर लगे पैरों के चिन्ह अटों की छत पर लगे हैं उन्ही छतोंपर तू बिसराम लीजो॥

भर्त्तुः कण्ठच्छविरिति गणैस्सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डेश्वरस्य ॥
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडाविरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३५ ॥

अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः
कुर्वन् सन्ध्यावलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्ज्जितानाम् ॥ ३६ ॥

३५ चण्डेश्वरः = चण्डाया ईश्वरः अर्थात् पार्व्वती पतिः ॥
गन्धवती = नाम नदी ॥

३६ महाकालं = महाकालाख्यं स्थानं ॥
आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् ।
मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात्

आमन्द्रं = ईषद्गम्भीरं ॥

३५ जइयो तू फेर मीत पावन पुनीत ठांव
चंडेश्वर धाम तीनलोक अधिकारी के ।
नाथ के गरे की छबि देखि अङ्ग तेरे माहिं
आदर सों लेंगे तोहि गण त्रिपुरारि के ।
करें जलकेलि नारि नागरि नवेली तहां
गन्धित हैं नीर गन्धवती सिन्धु प्यारी के ।
नीरन तें मोद औ कमोदन तें लै पराग
पवन झकोरे नित्त रूख बागवारी के ॥

३६ सांझ के बिना जो कहूं पहुंचे तू और काल
महाकालजू के पुन्यआश्रम में जाइके ।
ठैर तहां लीजो ईठ भानु रहे जौलों दीठ
दिवस उजारो रहे छिति छहराइके ।
सन्ध्यावलि पूजन जब होइ शूलधारी की
दुन्दुभि की ठौर दीजो गरज सुनाइके ।
मन्द मन्द घोरन को पावेगो फल अखण्ड
ऐसे वरदाई देव देव कों रिझाइके ॥

३५ फिर उसी नगरी में तू महादेवजीके पवित्र धाम चण्डेश्वर जाना वहां तेरे नीलवर्ण को अपने स्वामी के गले की अनुहार देखकर शिवजी के गण तुझे आदर देंगे उसी धाम में गन्धवती नदी वहती है जिसमें कस्तूरी इत्यादि का उवटन लगाकर नगर को स्त्रियां न्हाती हैं इस से उसका जल सुगन्धित है उसी जलकी सुगन्ध और नदी के कमलों का पराग लिये हुए पवन बगीचों के वृक्षों को झकोरती रहती है ॥

३६ जो तू सन्ध्याकाल से पहले अथवा पीछे महाकाल के मन्दिर पै पहुंचे तो सन्ध्या की आरती के समय तक वहीं ठैरियो जब आरती होनेलगे तू मन्दा मन्दा गरजियो तेरी गरज को दुन्दुभी का शब्द जानकर शिवजी प्रसन्न होंगे ॥

पादन्यासक्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतैः
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ॥
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ति त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥ ३७ ॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीन-
स्सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजवापुष्परक्तं दधानः ॥
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ३८ ॥

---

३७ आमोक्ष्यन्ति इत्यादि = आमन्द्राणां गर्ज्जितानामिदं फलम् ॥

३८ नागाजिनेच्छां हर = गजचर्म धारणेच्छां निवर्तय त्वमेव तत्स्थाने भवेति भावः ॥
स्तिमितं = निश्चलं ॥

३७ नाचति नवेली तहां वेश्या अलवेली बाल
किंकिनी बजति पग धरत सुहावनी ।
रत्नजड़ी डांड़िन के ढोरति हैं ठाड़ी चौंर
थकित भुजान करें लीला ललचावनी ।
जाहू नखरेखन में उनके परेंगी जब
नई बूंद तेरी मेघ सुखसरसावनी ।
बडे से कटाक्ष तोपै भ्रमरावली समान
डारेंगी सनेहभरे देई मनभावनी ॥

३८ बांधि फेरि मण्डल जब लेगो तू छाड़ मीत
लांबीसी भुजान रूप ऊंचे रूखवारो बन ।
फूल है जवा को नयो ता समान लालरंग
तेज सांझकाल हू को धारिलेगो कारेतन ।
नृत्यसमै ओढ्यो चहैं आलो गजचर्म नाथ
देखि तोहि भूलिजाइं ताको खरो घ्यारोपन ।
ग्लानि के मिटेते स्वस्थचित्त ह्वै भवानी तोहि
प्यार सों लखेंगी आज हरष्यो हमारो मन ॥

---

३७ उस मन्दिरमें वेश्या नाचती होंगी उनके नखच्छदों में तेरी बूंद पड़ने से सुख होगा इसलिये तुझे वे बड़े प्यार से कटाक्ष करके देखेंगी उनके कटाक्षऐसे हैं जैसी भौंरों की पंक्ति (अर्थात् काली और विषभरी) ॥

३८ जब तू ऊंचे ऊंचे रूखोंवाले बन पर छा जायगा और सन्ध्या की अरुणता का प्रतिबिम्ब तेरे काले शरीर में झलकेगा तो तू ऐसा दिखाईदेगा मानों लोहू टपकता हुआ हाथी का चमड़ा है तांडव नृत्य के समय शिवजी की इच्छा हाथी का आला चाम ओढ़ने की होती है तुझे देखकर वह इच्छा पूरी होजायगी और पार्वतीजी को जो ग्लानि लोहू टपकता गजचर्म देखने से होती है वह न होगी इसलिये वे तुझे प्यार की दृष्टि से देखेंगी ॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तव रात्रौ
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥
सौदामिन्या कनकनिकषच्छायया दर्शयोर्व्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भूर्विक्लवास्ताः ॥ ३८ ॥

तां कस्याञ्चिद्भवनवडभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः ॥
दृष्टे सूर्य्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थ कृत्याः ॥ ४० ॥

३८ विद्युच्छायया मार्गं दर्शय किन्तु तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां
दृष्टिगर्ज्जिताभ्यां शब्दायमानो मास्मभूः ॥

४० भवनवडभिः = गृहाच्छादनोपरिभागः ॥
पारावतः = कपोतः ॥

सवय्या

३९ मीत के मन्दिर जाति चलीं
मिलिहैं तहां केतिक राति में नारी।
मारग सूझ जिन्हे न परै जब
सूचिकाभेदि झुकै अंधियारी।
कंचनरेख कसौटीसी दामिनि
तू चमकाइ दिखाइ अगारी।
कीजियो ना कहुं मेह कौ घोर
मरें अबला अकुलाइ बिचारी॥

४० थकि जाइगी दामिनि तेरी तिया
बहुबेर लौं हासविलास करे।
टिक रात में लीजियो काहू अटा
जहां सोवत होइं परेवा परे।
दिन उगत फेर उतै चलियो
जित में चलिवे कौं रहे डगरे।
सहतात कहां नर वे जग में
जिन मीत के कारज सीस धरे॥

---

३९ अवन्ती में तुझे बहुत सी अभिसारिका नाइका रात में अपने अपने प्रीतमों के पास जाती हुई मिलेंगी तेरे पहुंचने से अंधेरी ऐसी गाढ़ी झुकेगी मानो सुई से छिद जाइगी जब उस अंधेरी में उनको मार्ग न सूझे तो तू बिजली ऐसी चमका दीजो जैसे काली कसौटी पै सोने की लकीर होती है परन्तु मेह की घोर मत कीजो नहीं तो वे घबड़ा जाइंगी॥

४० चमकते चमकते तेरी प्यारी बिजली थक जाइगी इसलिये किसी एकान्त महल पर जहां खटका इतना भी न हो कि सोते हुए कपोत जाग पड़ें तू रात में बिसराम करलीजो फिर प्रात:काल अलका का मार्ग लीजो क्योंकि ज़िसने मित्र का कारज अपने सिर लिया उसे उस कारज के होने तक सस्ताना नहीं मिलता॥

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ॥
प्रालेयाश्रं कमलवदनात् सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ४१ ॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ॥
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्य्या-
न्मोघीकर्त्तुं चटुलसफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि ॥ ४२ ॥

४१ प्रत्यावृत्तः = प्रत्यागतः ॥

४२ गम्भीरा = नाम नदी ॥

मोघी = विफली ।

सफरः = मीनः ॥

उद्वर्तनं = उल्लुण्ठनं ॥

४१ भोर भए बनिता खण्डितान के
मीत मिलें अंसवा पुछजात हैं ।
छोड़ियो यातें तुरन्तहि सो मग
जा मग आवत भानु प्रभात हैं ।
चाहत वेहू मिटावन कों
नलिनी मुख ओस के आंसू दिखात हैं ।
रोकियो ना उनकी किरनें
अनखाइं बड़े अनखान की बात हैं ॥

४२ अति उज्जल नीर गंभीरा नदी
निरदोष हिये के समान धरै ।
मनभावन तो प्रतिबिम्ब सुहावन
ता जल जाइ परैही परै ।
फिर का बिधि होइगो जोग जु तू
निठुराई सखा इतनी पकरै ।
सफरी गति चंचल स्वच्छ सरोरुह
वाकी चितौनि निरास करै ॥

४१ प्रात का समय ऐसा होता है कि उस में खंडिता नायकाओं का क्लेश उन के प्रीतम आकर मिटाते हैं और सूरज देवता भी अपनी प्यारी कमलिनी के मुख से ओस के आंसू पोंछने आते हैं इसलिये तू उस समय सूरज का मार्ग न रोकियो जो रोकेगा तो सूरज तुझपै कोप करेंगे और खंडिता नायका भी क्लेश में रहेंगी ॥

४२ गंभीरा नदी का जल ऐसा उज्जल है मानो स्त्री का निर्दोष हृदय और उस में सफरी मछलियों की झपट हैं सोई मानो कमल समान स्वच्छ नेत्रों के कटाक्ष हैं उस जलरूपी हृदय में जब तू प्रतिबिम्ब रूप से प्रवेश करलेगा फिर क्योंकर ऐसा कठोर हो सकेगा कि उन कटाक्षों को देखा अनदेखा करके चलाजाय ॥

तस्याः किञ्चित् करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ॥
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥ ४३ ॥

त्वन्निस्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्कपुण्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ॥
नीचैर्व्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्व्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४४ ॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ॥

४३ वानीरं = वेतसं ॥
विवृतजघनाम् = प्रकटी कृतं जघनं यया ताम् ॥

४४ देवपूर्व्वं गिरिम् = देवगिरिम् ॥
काननोदुम्बराणां परिणमयिता = वनजन्तुफलानां परिपाकयिता ॥

४५ स्कन्दः = पार्व्वतीनन्दनस्कन्दः सेनानीरग्निभूर्गुहः ।
कार्त्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः ॥

दोहा

४३ तट सों उठि वाको सलिल लग्यो डार वानीर ।
कर पकरत सरक्यो मनो कटितें नीलो चीर ॥
लिये ताहि कैसे बने प्यारे तेरो गौन ।
नगन जघन के तजन कों रसिया समरथ कौन ॥

४४ तो बरसत छितिगन्ध मिलि होइ पवन रमनीय ।
बनगूलर पकावनहाल श्रवनसुभग गजप्रीय ॥
शीतल मन्द सुगन्ध बहि करिहै पग पग सेव ।
मारग में जब तू चलै पहुंचन कों गिरिदेव ॥

सवय्या

४५ नित्त निवास कुमार करें वहां
तू उनकों अन्हवाइयो जाइकै ।
पुष्पमई बदरा बनिकै
नभगंग मिले फुलवा बरसाइकै ।

---

४३ नदी को कवि ने प्रवतस्यत् पतिका नायका बनाया है उसका नीला जल है सोई नील वस्त्र है तरङ्ग से उठकर जो जल वेत की डाल में लगा है मानो चलते समय नायक ने उसको निशानी लेजाने के लिये वस्त्र पकड़ा है सो तटरूपी कटि से सरक गया है ऐसी नायका को छोड़कर हे मेघ तू क्योंकर आगे जा सकेगा ॥

४४ तेरे बरसने से पृथ्वी की सुगन्ध पवन को सुगन्धित करेगी वही पवन रूखों में मीठी ध्वनिसे बहेगी बन गूलरों को पकावेगी हाथियों को प्यारी लगेगी देवगिरि पर्वत तक मार्ग में तेरी सेवा में रहेगी ॥

४५ कहते हैं कि जब तारकासुरको इन्द्र न जीत सका तो देवताओं ने शिवजी से सहायता मांगी शिवजी ने देवसेना को रच्छा के निमित्त अपना तेज अग्नि को दिया परन्तु अग्नि से सहा न गया उसने गंगाजी में डाला गंगाजी का वही षरमुख पुत्र हुआ फिर सरकड़े के बन में कृत्तिकाओं ने पाला इस्से नाम उसका शरवनभव और कार्त्तिकेय हुआ अग्नि से जन्मा इसलिये पावकी कहलाया कुमार स्वानी और स्कन्द भी उसी

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः ॥ ४५ ॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ॥
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्त्तयेथाः ॥ ४६ ॥

आराध्यैनं शरवनभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्दत्तमार्गः ॥

४६ ज्योतिर्लेखावलयि = तारापंक्ति मंडलं यस्मिनस्ति तत् ॥
कुवलयदलं = कमलदलं ।

जन्म दियो हर पावक में
जिनकों सुरराजचमू हित लाइके।
मन्द करें रवि को परतापहु
आपने मात पिता गुन पाइके॥

४६ जा उनके बरही को पखा
गिरि तारेजडीसो कहूं परती है।
गौरि उठाइके पूत सनेह सों
कानन कञ्ज सो ले धरती है।
जासु कोएन की उज्जलता
शिव के शशिसों समता करती है।
ताहि नचाइयो घोर बड़ी करि
मांहि गुफान के जो भरती है॥

४७ चलियो घन पूजिके वा सुरकों
शर को बन जासुको जन्ममही है।
डर बूंदन के मग तेरी तजें
जिन दम्पति सिद्धन वीन गही है।

बालक के नाम हुए वाहन उस का मोर है जब कुमार बड़ा हुआ तारकासुर को मार उसने सदां सदां के लिये देवगिरि पर्वत पर वास लिया शिव पार्वती उस के मा बाप कहलाते हैं हे मेघ देवगिरि पर्वत पै पहुंचकर तू कुमार स्वामी को आकाश गंगा के जलमें भीगे हुए फूलों की बरषा करके स्नान कराइयो॥

४६ स्वामिकार्त्तिक का वाहन होने के कारन मोर पर पार्वती जी बहुत प्यार करती हैं उसकी गिरी हुई पंखको जिसमें चन्दोए तारेसे जड़े हैं उठाकर अपने कान पर कमल की ठौर रखलेती हैं और जिसके कोयों की उज्जलता शिवजी के मस्तकवाले चन्द्रमा की चांदनीसे होड करते हैं उसी मोरको तू बड़ी घोर करके देवगिरि पै नचाइयो॥

४७ स्कन्दजी को जिनको जन्मभूमि सरकाड़े का बन है तू पूजकर आगे चलियो उन्हें वीना

व्यालम्बेथास्सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम् ॥ ४७ ॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याश्सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात् प्रवाहम् ॥
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४८ ॥

तामुत्तीर्य्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम् ॥
कुन्दक्षेपानुगमधुकर श्रीजुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्व्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ४९ ॥

४७ सुरभितनयालम्भजां = गोहननाज्जातां ॥
　रन्तिदेवः = नामराजा ॥

४८ शार्ङ्गिणः = विष्णोः ॥
　सिन्धुः = नदी ॥

४९ दशपुरं = रन्तिदेवस्य नगरम् ॥

करि आदर हौलि उलांघियो तू
गउमेघन तें सरिता जो बही है।
मनु कीरति श्री रंतिदेव जू की
जलरूप में भूतल फैलि रही है॥

४८ विसतार के माहिं बड़ी सरिता
वह दूरतें दीखति है पतरी।
हरि रंग के चोर पिये जब तू
जल वामें झुकाझुकी देह खरी।
लखि लेहिंगे खेचर तोहि घने
करि दीठि तुरन्तहि चाव भरी।
मनु भूमि की मोतिन माल में एक
बडी मणि नीलम आनि धरी॥

चौपाई।

४९ उतरि ताहि आगे मग लीजो। दशपुर तियन दरश चलि दीजो॥
भरे कुतूहल उनके नैना। जानत भ्रूविलास अरु सैना॥
लखन तोहि जब पलक उठैहें। अद्भुत मृग लोचन दुति पैहें॥

सुनानेका सिद्धलोग अपनी स्त्रियों सहित आते होंगे सो वीना भोगनेके डरसे तेरा मार्ग छोड़ देंगे फिर तुझे चर्मनवती अर्थात् चम्बल नदी मिलेगी जिसकी उत्पत्ति महाराज रन्तिदेव के अनेक गोमेधों के रुधिर से कहते हैं तू उस नदी को आदर करता हुआ धीरे धीरे उलांघियो क्योंकि वह मानो जलरूप में रन्तिदेव की कीर्ति है॥

४८ चम्बलका बिस्तार तो बहुतहै परन्तु दूर से आकाश में फिरने वालों को एसी पतली दीखती है मानो पृथ्वीके गलेमें मोतियों की माला पडी है सो जब तू काले वर्ण का (कृष्ण के रंगका चोर) उसमें से पानी लेने झुकेगा उन को ऐसी शोभायमान दीखेगी मानो उसी माला में एक बड़ा नीलम रक्खा है॥

४९ उस नदी को उतरकर तू दशपुर जाना (जो रन्तिदेव की राजधानीहै) वहां की स्त्रि-यां बहुत चतुरहैं उनको तू अपना दरशनदीजो तुझे देखनेको जब वे आंख उठावेंगी

ब्रह्मावर्तं जनपदमधश्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथाः ॥
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यषिञ्चन्मुखानि ॥ ५० ॥
हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याश्सिषेवे ॥
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ५१ ॥
तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ॥
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५२ ॥

५० सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तंदेवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ मनुः २ ॥ १७ ॥

५१ लाङ्गली = हलधरः, बलदेवः ॥

५२ अनुकनखलं = हरिद्वारं ॥
खलैः को नात्र मुक्तिं व भजते तत्र मज्जनात् ।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥
शैलराजावतीर्णां = हिमालयादागतां ॥

जिमिअलिपांतिकुन्दसंगभाजति। सो छबि उननैननबिच राजति॥

५० चलियो ब्रह्मावर्तहिं छाई। अरु कुरुक्षेत्र पहुंचयो जाई॥
बिकट जुद्ध छत्रिन जहं कीन्हे। अजहुं प्रगट तिनके हैं चीन्हे॥
बरसे जहं अरजुन शितबाना। राजन के सिर बेपरमाना॥
जिमि बरसति तेरी जलधारा। कमलमुखन अनगिनत अपारा॥

शिखरिनी

५१ तजी प्यारी हाला विमल निजबाला दृगनसी
हली बंधूस्नेही समर तजि सेई सरसुती
मिले जो तू वाही सुभग सरिता के जलनतें
करे अन्तश्शुद्धी तुव वरण साच कृष्णहु की

५२ चल्यो आगे जय्यो कनखल जहां जान्हवलली।
हिमाले तें आई सगरकुल श्रेनी सुरग की।
करीजाने गौरी भ्रुव कुटिल की फेनन हंसी।
जटा शम्भूजी की शशिसहित वीचीकर धरी॥

काली पुतली और स्वेत कोयों को शोभा ऐसी दरसेगी मानो चलते हुए कुन्द पुष्प के पीछे भोरों की पंक्ति जाती है

५० ब्रह्मावर्त देशपर छाया डालता हुआ तू कुरुक्षेत्र पहुंचियो जहां महाभारत की लड़ाई के चिन्ह अबतक दीखते हैं उस लड़ाई में अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष से राजाओं के सिरपर बेप्रमाण पैनेबाण ऐसे बरसाए थे जैसे तू कमलों पर मेहकी धारा बरसाताहै॥

५१ कौरव पांडवों को समानबन्धू जान बलदेवजी उनके संग्राम में न गए प्यारी, मदिराको जिसे सौतभाव से रेवतीजो निरखा करती थीं अथवा जो उनके नेत्र समान निर्मल थी त्याग कर सरस्वती नदी का सेवन करते रहे उसी नदीके जलसे मिलकर तुझ वर्णमात्र कृष्ण का भी अन्तस शुद्ध होजायगा॥

२५ आगे तू कनखल जाना जहां जन्हुसुता (श्री गङ्गाजी) सगर सन्तान को स्वर्ग की नसेनी हिमालय से उतरी है जब सौतभाव करके पार्वतीजी ने भौंह टेढ़ी की थी तो उसी गङ्गाजी ने अपने स्वेत फेनों से मानों उनकी हंसी करके अपने तरंगरूपी हाथों से शिवजी की जटा चन्द्रमा सहित पकड़ ली थी॥

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पूर्व्वार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्य्यगम्भः ॥
संसर्पन्त्यासपदि भवतः स्रोतसि च्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेनाभिरामा ॥ ५३ ॥
आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ॥
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयन वृषोत्खात पङ्कोपमेयाम् ॥ ५४ ॥
तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ॥
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्त्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५५ ॥

५३ तर्कयेः = विचारयेः ॥
तिर्य्यक् = तिरश्चीनं यथा स्यात्तथा ॥
स्थानोपगतः = प्रयागादन्यत्र प्राप्तः ॥

५४ प्रभवं = कारणं अथवा पितरम् ॥

५५ सरलः = देवदारुः ॥

५३ जु तू इच्छा वाके करि विमल पानी पियन को।
झुकि आधो लम्बेतन गगन में ज्यों सुरकरी।
वनै तो छाया तें तुरत वह धारा ललित सी।
मनो है कालिन्दी अनतहिं बिनासंगम मिली॥

५४ पिताजी पै वाके नितहि कसतूरी मृग वसें।
शिलासोंधो यातें अरु धवल पालो परि लसै।
विराजैगो जो तू श्रमहरन ताको शिखर पै।
दिपैगो ज्यों गोरे शिववृषभ खोदी कलिल है॥

छप्पै

५५ चलत पवन वन प्रवल घिसत तरु सरल परस्पर।
प्रगटत अनल प्रचण्ड हरत चमरीमृग कचभर।
सो दवागि यदि दहकि देह तिहिं अचल सतावै।
उचित होइ तब तोहि तुरतही जल्ल बरसावै।
करि करि सहस्रधारा जलद दूर तासु बाधा करे।

५३ जो तू गंगाजी का जल पीने को दिग्गज की भांति आकाश में लम्बा होकर झुकेगा तो तेरे काले रंग को छाया खेतजल में पड़कर ऐसी शोभा होगी मानो प्रयाग के विनाही गंगा जमुना का संगम हुआ है॥

५४ हिमालय पर्वत पर (जो गंगाजी का पिता कहलाता है) नित्त कस्तूरी मृग वैठते हैं उनको नाभि लगने से उसकी शिला सुगन्धित हैं और पाला पड़ने से वह सुपेद दीखता है मार्ग की थकावट मिटानेवाली उसकी शिखर पर जब तू वैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो शिवजी के धौले नांदिये के सींग पर कीचड़ लग रही है॥

५५ पवन चलने से सरल (देवदारु) के वृक्ष आपस में रगड़ते हैं उनसे आग निकल कर वन में लगती है चिनगारियों से चमरीमृगों की पूंछके बाल जलते हैं कदाचित तेरे सामने वही दावानल आग पहाड़ में लगे तो तू तुरन्त जल बरसा कर पहाड़ की बाधा मिटा

ये त्वां मुक्तध्वनिमसहनाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लङ्घयिष्यन्त्यलङ्घ्यम् ॥
तान् कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिहासावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥ ५६ ॥

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्द्धेन्दुमौलेः
शश्वत् सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः ॥
यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्द्ध्वमुद्धूतपापाः
कल्पन्तेऽस्य स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥ ५७ ॥

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्य्यमाणाः
संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ॥

---

५६ शरभाः = अष्टापद मृगविशेषाः ॥

५७ उपचितबलिम् = रचित पूजाविधिम् ॥
परीयाः = प्रदक्षिणं कुरु ॥
करणविगमादूरम् = देहत्यागानन्तरम् ॥

५८ कीचकाः = वेणवः ॥ कीचकास्ते स्मृर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः ॥

फल मुख्य सजन सम्पति यही पीर पराई नित हरे ॥

५६ सुनत शब्द घनघोर शरभ तिहिं परवत माहीं ।
कुपित होइंगे अधिक तोहि सहि सकिहैं नाहीं ।
कूदकूद करि दर्प वृथा अपनो तन तोरैं ।
तो अलंघ्य कों चहें लांघि ऊपर की ओरैं ।
बरसाइ घने करका तिन्हे दीजो बिहसि भजाई घन ।
को न जगत लज्जित भयो जिन कीनो निष्फल यतन ॥

५७ शिला एक विच लसत चिन्ह तहं पद शशिशेखर ।
नितप्रति पूजत रहत जाहि जोगी सिद्धेश्वर ।
परिक्रमा घन तासु यथाबिधि तू चलि दीजो ।
भक्तिभाव उर लाय नम्र आगे बनिलीजो ।
धरि अचल दीठि तिहिं चरन में श्रद्धमान निष्पापनर ।
तन तजत मिलत शिवगणन में सदां सदां कों पाइ वर ॥

५८ बांसरन्ध्र भरि करत पवन धुनि अधिक सुहावन ।
मानहु मुरली बजति मधुर सुर सों मनभावन ।

दीजो क्योंकि सत्पुरुषों की सम्पत्ति का मुख्य फल यही है कि पराई पीर हरे ॥

५६ तेरा गरजना सुनकर शरभों को बड़ा कोप होगा (ये आठ पांव के पशू बड़े बलवान होते हैं) अपने बलका इन्हे बड़ा घमण्ड है तुझे उलांघने के लिये ऊपर को कूद कूद अपने हाथ पांव तोड़ेंगे तू ओलों की वरषा से हंसी सो करके उन्हे भगा दीजो निष्फल यतन करने से जगत में किस की हँसी नहीं हुई ॥

५७ उसी पहाड़ में महादेव जी को चरनशिला है जिसे योगी नित्य पूजते हैं तू भक्तिपूर्वक नम्र होकर उसकी प्रदच्छिना कीजो उस में श्रद्धामान शुद्ध पुरुष ध्यान टेकर मरने से पीछे शिवजी के गणों में सदां सदां को गिनती पाते हैं ॥

५८ बन के पुराने बांसों में जो छेद हैं उनमें भर के पवन मधुर मुरली की सी धुनि करेंगो किन्नरी अच्छे सुरसे शिवजी के गीत गावेंगो ऐसे में जो तू भी गरज कर गुफाओं

निह्रादी ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ ५८ ॥

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ॥
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्य्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥ ५९ ॥

गत्वा चोर्द्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ॥
तुङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ ६० ॥

५९ भृगुपतियशो वर्त्म =परशुरामस्य यशः प्रवृत्तिकारणम् ॥

६० अट्टहासः= हासादीनां धावल्यं कविसमय सिद्धम् ॥

विह्वल किन्नरनारि आपनी तान सुनावति ।
हरषि हरषि जिय माहिं त्रिपुरविजई गुन गावति ।
घनघोर जाइ यदि तू करे ज्यों मृदङ्ग गुमकत गुफन ।
पूरन समाज संगीत तहं पशुपति को बनजाइ घन ॥

चौपाई

५८ आगे हिमपरवत तट पाटी । क्रौञ्चरन्ध्र नामक इक घाटी ॥
है सोई हंसन को द्वारा । भृगुपति यश प्रगटावनहारा ॥
ताबिच कढि उत्तरचलि दीजो । तिरछी गति लम्बो तन कीजो ॥
जिमि हरि श्यामपांवविस्तार्यो । बलि छलिबेको व्रतजब धार्यो ॥
६० उठि ऊंचो कैलासहिं जइयो । अतिथी वा गिरिको बनिरहियो ॥
है दर्पण वह सुरबनितन को । उकसायो लंकेश भुजन को ॥
तुङ्ग शिखर सों नभ में राजत । सितता तासु कुमुद लखिलाजत ॥
मनु शिवअट्टहास इकठौरो । करत प्रकाश दिशन बिच धौरो ॥

में मृदंग सा बजादेगा तो महादेवजी के संगीत का पूरा समाज वहां बन जायगा ॥

५८ आगे हिमालय के तट में क्रौञ्चरन्ध्र नाम घाटी है उसी में होकर हंस आते जाते हैं और वही परशुराम के यश का मार्ग है अर्थात् परशुराम का यश पहले उसी में प्रगट हुआ था (क्योंकि महादेव से बानविद्या सीखकर जब परशुराम क्षत्रियों को जीतने कैलास से उतरे तो अपने बानों से पहाड़ काटकर यह नया मार्ग उन्होंने बनाया था) तू लम्बा और तिरछा होकर उससे निकल जाना तेरा लम्बा शरीर ऐसा शोभायमान होगा जैसा बलि छलने के समय वामन जी का बढ़ाया हुआ पांव था

६० क्रौञ्चरन्ध्र से निकलकर तू ऊपर को चलियो आगे कैलास मिलेगा उस का पाहुना बनियो वह पर्वत स्फटिक मणि का है इस लिये देवताओं की स्त्रियों का दर्पण है उसी को रावन ने जड़ से हिला दिया था उसकी स्वेत शिखर आकाश से लग रही है सुपेदी में कमल को भी लजाता है मानो शिवजी का अट्टहास इकट्ठा होकर दिशाओं में चमकता है ॥

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ॥
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंशन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ६१ ॥

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विहरेत् पादचारेण गौरी ॥
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु ॥ ६२ ॥

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ॥
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्म्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भीषयेस्ताः ॥ ६३ ॥

हेमाम्भोज प्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्व्वन कामात् क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ॥

---

६१ स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे = सचिक्कण मर्दितं यदञ्जनं तस्यामिवाभा यस्मिन् ॥
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदः = तत्काल छिन्नस्य गजदन्तस्य खण्डः ॥

६२ भङ्गीभक्त्या = पर्व्वणां रचनया ॥
स्तम्भितान्तरजलौघः = घनोभावं प्रापितोऽन्तरजलस्य प्रवाहो येन सः ॥

६३ यन्त्रधारागृहत्वम् = जलसेचनयन्त्रम् ॥

६१ वाके निकट जवहिं तू जाई । रहै रुचिर अंजनरंग छाई ॥
खेतवरण वह शैल निदाना । द्विरदन्त सद्यखण्ड समाना ॥
शोभा तुरत मनोहर पावे । निरखत इकटक नैनन भावे ॥
जिमि हलधरतनलसतसुहायो । नीलवसन कांधे लटकायो ॥
६२ लिए शम्भुकर निजकर माहीं । भुजगवलय जाकर बिच नाहीं ॥
गवरि होइ पायनयदि फिरती । वा क्रीडागिरि मांहि विचरती ॥
पैरीरूप सुभग बनिलीजो । पुष्ट नीर अन्तर को कीजो ॥
धरिधरि पग तापै जव धावें । चढत चरन कछु खेद न पावें ॥
६३ सुरयुवती जुरि मिलि तहं आवें । पकरि तोहि जलजन्त्र बनावें ॥
रघसि रघसि हीराकंगन सों । नीर झरावें तो अंगन सों ॥
इन खिलवारन तें यदि तेरो । छुटकारो नहिं होइ सवेरो ॥
श्रवनकठोर घोर तब कीजो । यों डरपाय उन्हे मग लीजो ॥

घनाचरी

६४ उपजत वृन्द वृन्द वारिज सुन्हेरी जामें ।
ऐसौ मानसर कौ लै नीर मेघ पीजो तू ।

---

६१ वह पहाड़ तुरन्तु के कटे हाथी दांत के समान उज्जल है और तू कज्जल समान काला है जब उसकी शिखर पर जाकर तू बैठेगा तो ऐसी शोभा पावेगा मानो गोरे बलदेव जी के कंधे पर नीलाम्बर रक्खा है ॥

६२ शिवजी के जिस हाथ में सर्पका कंगन नहीं है उसे अपने हाथ में लिये हुए कदाचित पार्वती जी उस पहाड़ में पैरों फिरती हुई तुझे मिल जायं तो तू अपने भीतरका जल कड़ा करके सोढ़ी का रूप धर लीजो इसलिये कि तेरे शरीर पै पांव रखकर चढ़ने में उन्हे खेद न हो ॥

६३ वहां देवताओं की स्त्रियां तुझे पकड़ कर जल छिड़क ने की कल अर्थात् पिचकारी बनावंगी और अपने हीराजड़े कंगनो से तेरे शरीर को रगड़ कर जल वरसावेंगी उन के इस खेल से जो तेरा छुटकारा न होसके तो तू कठोर घोर करके उन्हें डरा दोजो ॥

६४ मानसरोवर का जो नोर सुनहरी कमल उपजाता है उसे तू पीजो ऐरावत हाथी को

धुन्वन् वातैस्सजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि
च्छायाभिन्नस्फटिकविशदं निर्व्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६४ ॥

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ॥
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाने-
र्मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६५ ॥

इति पूर्व्वमेघः

६४ कल्पवृक्षः = पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पंसि वा हरिचन्द्रनम् ॥
निर्व्विशेः = समुपभुङ्क्ष्व ॥
नगेन्द्रम् = कैलासम् ॥

६५ दुकूलं = सूक्ष्म वस्त्रं ॥
न त्वं दृष्टा न पुनरलकां ज्ञास्यसे = पुनस्त्वन्तु न ज्ञास्यसे इति न किन्तु ज्ञास्यस एव

बून्दन बुन्यो सो मुखवस्त्र वाहि देके नेक
दिग्गज ऐरावत सों प्रीति मानिलीजो तू।
वारि भरी बातन तें कल्पवृच्छपातन में
कान कौं सुहातो सो धुनि सुनाई दीजो तू।
फटिक समान गोरे बिम्बित वा शैलमाहिं
जोई तोहि भावें सो बिहार फेर कीजो तू॥
६५ देखि जानि लीजो वा नगेन्द्र के बसो है लङ्क
अलका हमारी तीर जन्हु की दुलारी के।
पीतम के अङ्क मांहि एहो कामचारी मेघ
बैठी जिमि नारी छोरें छोर स्वेतसारी के।
पावस में सोई नीरचूवत धरेगी तोहि
ऊंचे से निकेत सातखन की अटारी के।
अवला संवारे मानो मोतिन सों गूंथे जाल
सीस पै सलोने चारु बेनी बार कारी के॥

इति पूर्व्वमेघ:

अपनी बूंदों का सिरोपाव देकर उससे प्रीति कीजो अपने जलसे भीगी हुई पवन चला कर कल्पवृच्छों के पत्तों में मीठी धुनि कराइयो इस भांति उस चित्र विचित्र स्फटिक समान निर्मल पहाड़ में जहां चाहे तहां फिरियो (क्योंकि वह तेरा मित्र है)
६५ कैलास के कटक में जाकर देख लीजो गंगाजी के तीर पर हमारी अलकापुरी ऐसे बस रही है मानो सुपेद साड़ी के छोर खोले हुए कोई नायका अपने प्यारे को गोद में बैठी है वही अलका वरसात में तुझ जल टपकाते हुए को अपने ऊंचे महलों पर ऐसे रखलेगी जैसे मोतियों से गूंथे हुए काले अलकजाल को कामिनी अपने मस्तक पर रखती है॥

मेघदूतउत्तरार्द्धम्

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्रा-
स्सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ॥
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ ६६ ॥

हस्ते लीलाकमलमलकं बालकुन्दानुविद्धं
नीतालोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामाननश्रीः ॥
चूडापाशे नवकुरुवकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्तेऽपि त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ ६७ ॥

यस्यां यक्षास्सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ॥
आसेवन्ते मधु रतिरसं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ६८ ॥

---

६६ तुलयितुं अलं = समौ कर्तुम् पर्याप्ताः ॥

६७ कमल कुन्दादि तत्तत्कार्य्य समहाराभिधानादर्थात्
सर्व्वर्तुसमाहारसिद्धिः ॥

६८ सितमणिमयानि = स्फटिकमणि मयानि ॥

मेघदूत उत्तरार्ध

सवय्या

६६ होड़ वहां करि हैं बहु भांतिन तो संग मन्दिर नीको छटाके
तू चपला सुरचाप लिये उनमें अबला अरु चित्र अटाके
तो उर नीर वहां भुमि हीर मृदङ्ग उतै इत शोर घटाके
तुङ्ग है तू तौ शिखा उनकी परसिद्ध हैं नाम सों अभ्रचटाके ॥

६७ तिय हाथन केलिकमोद वहां अलकावलि सोहति कुन्दकली
रजलोध्रप्रसून परे मुख पै दुति दीखति ज्यों पियराई भली
कुरवा नए चोटिन माहिं लसें अरु कान शरीषन की अवली
तुहि देखत फूल कदम्ब खिलें सोई मांगधरे सुखमा है भली ॥

६८ स्वेत बिलौर के भौंनन में वहां फूल से तारकबिम्ब परें नित
तो मधुरी धुनि के अनुमान मृदङ्ग बजें सुरमन्द भरें नित
कामिनि भामिनि सङ्ग लिये बहु भांतिन यत्त विहार करें नित

---

६६ हे मेघ अलका के महल अनेक भांति तेरी बराबरी करेंगे तेरे साथ बिजली और इन्द्र धनुष है उनमें चंचल स्त्री और चित्रकारी हैं तेरे अन्तर में उज्जल नीर हैं उनके आंगनों में स्फटिकमणि जड़ी हैं तुझमें घोर है उनमें संगीत के मृदङ्ग बजते हैं तू ऊंचा बहुत है उनको मुंडेली भी अभ्रचट (अर्थात् बादल चाटनेवाली) कहलाती हैं (महलों के नाम बहुधा अभ्रंकश, अभ्रंलिहाग्र, मेघपृष्ट इत्यादि होते हैं) ॥

६७ वहां स्त्रियों के हाथों में खेलने के कमल हैं अलकों में कुन्द की कली हैं लोध्र की रज से मुख की कान्ति पीली दीखती है कानों पर सिरस के फूल रक्खे हैं चोटियों में कुरवक गूंथे हैं और वरसाऋतु में फूलनेवाले कदम्ब के फूल मांगों में लगे हैं (तात्पर्य यह कि अलका में छत्रों ऋतु के फूल सदां फूलते हैं) ॥

६८ वहां स्फटिकमणि के महलों में तारों की छाया ऐसी पड़ती है मनो फूल जड़े हैं मन्दी ध्वनि से मृदङ्ग ऐसे बजते हैं मानो धीरे धीरे बादल गरजता है उन्ही महलों में यत्त

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
क्लृप्तच्छेदैः कनकनलिनैः कर्णविभ्रंशिभिश्च ॥
मुक्ताजालैस्स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गस्सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥ ६८ ॥

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र यक्षाङ्गनानां
वासः कामादनिभृत करेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ॥
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखगतान् प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढ़ानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ७० ॥

नेत्रा नीतास्सततगतिना ये विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां सजलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः ॥
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा यत्र जालै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ७१ ॥

६८ क्लृप्तच्छेदैः = रचित खण्डैः ॥
स्तन परिसरः = उरोजोन्नतिः ॥
नैशो मार्गः = निशाभिसारिकाणां पन्थाः ॥

७१ नेत्रा = नायकेन ॥
सततगतिना = वायुना ॥

पीवत कल्पप्रसूतमधू सिगरे रतिरंग प्रसंग सरें नित ॥
६९ अलकावलि तें गिरि फूल परे गति आतुर मांहि मंदारन के
अरु कानन तें खिसले अवतंस बने कलधौतकल्हारन के
कुच उन्नति के गुन तें मुकता बिखरे गुन टूटत हारन के
इन तें वहां भोरहि जानि परें मग राति भए अभिसारन के ॥
७० वहं प्रीतम ढीठ भए रस के बस हाथ चलावत जोरी करें
गिर जच्छबधून के वस्त्र कछू खिच छोर छरान को डोरी परें
दुति निर्मल रत्नप्रदीप धरे सोइ लोइसी आंखिन ओरी जरें
तिन ऊपर कुङ्कुम फेंकि वृथा गडि लाजन भोरी सी गोरी मरें ॥
७१ वहं पौन के पेरे कितिकहु बादर तो उनहार के आवत हैं
जल बून्दन की बरषा करिके अंगनान के चित्र मिटावत हैं
भयभीत से फेरि झरोखन ह्वै सिमिटे तन बाहर धावत हैं
कढ़िजान कों बेगि धुआं बनिके बड़े चातुर वेहु कहावत हैं ॥

लोग सुन्दर स्त्रियों के साथ रतिरस का फल देनेवाली कल्पवृक्ष की मदिरा पीकर विहार करते हैं ॥

६९ जिन मार्गों होकर वहां रात में अभिसारिका नायका गई होंगी वे दिन निकलते ही इन चिन्हों से पहचाने जायंगे कि वेग चलने में कहीं उनकी अलकों से छूटकर मन्दार के पुष्प गिरे हैं कहीं कानों से कनककमल (कलधौतकल्हार) के करनफूल खिसले हैं कहीं उरोजों की उंचाई से हार का डोरा टूट मोती बिखरे हैं ॥

७० वहां कामकेलि में जच्छ लोग अपनी स्त्रियों के वस्त्रों पर हाथ डालते हैं जिससे नीवी बन्ध (छरा अथवा नाड़ा) खुलकर कपड़े ढीले होजाते हैं फिर मुग्धा स्त्रियां लाजकी मारी सामने रक्खे हुए रत्नदीपकों पर चूर्ण की मुट्ठी फेंकती हैं परन्तु मणि के दीपक चूर्ण की मुट्ठी से कब बुझते हैं ॥

७१ पवन के साथ अलका के महलों में बहुतेरे बादल आकर आंगनों के चित्र अपनी बूंदों से बिगाड़ते हैं फिर डर के से मारे तुरन्त छोटा शरीर बनाकर झरोखों के मार्ग भाग जाते हैं (जैसे छंड़ी की राह कोई व्यभिचारी भागता है) ॥

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम्-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ॥
त्वत्संरोधापगमविशदैः प्रेरिताश्चन्द्रपादै-
र्व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥ ७२ ॥

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ॥
सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चटुलवनितविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ ७३ ॥

७२ व्यालुम्पन्ति = दूरी कुर्वन्ति ॥
चन्द्रकान्तः = मणि विशेषः ॥

७३ देवं = शिवं ॥

मन्मथ चापोऽपि क्वचिदपि वितथो स्यात् नतु अलकाङ्गनानां विभ्रमाः ॥

७२ लटकें वहां सूत के जाल धरीं मणि इन्दुप्रिया छवि पावती हैं।
सित निर्घन चन्द्रमरीचिन कों अपने तन खेंचि मिलावती हैं।
फिर उज्जल नीरन की बुंदियां हरवें हरवें बरसावती हैं।
गलबाहीं पिया तें छुटी ललना तिनकी रतग्लानि मिटावती हैं॥

घनाक्षरी

७३ मीत किन्नरेश रहें नित्त ही महेश यहां
जानि यों रतेश चित्त शंका बिसरावे ना।
ताही डर बार बार अलकापुरी के माहिं
भृङ्ग की प्रतिञ्चा खेंचि चाप पै चढ़ावे ना।
नागरि तियान नैनविभ्रम प्रताप पाय
कारज में वाके तऊ हानि होन पावे ना।
छूटत कटाक्ष बांकी भौंह की कमाननतें
कामीरूप बेझो बिनाबिध्यो रहि जावे ना॥

---

७२ उन महलों में चन्द्रकान्त मणि सूत की जालियों में लटती हैं और निर्मेघ चद्रमा की उज्जल किरणों को खंच कर जल टपकाती हैं जिनकी शीतलता से स्त्रियों की सुरत ग्लानि मिटती है॥

७३ कामदेव जानता है कि कुवेर के सखा महादेवजी साक्षात अलका में रहते हैं इसलिये उन के डर से वह अपना भौंरों को प्रतिञ्चावाला धनुष बहुधा उस पुरी में नहीं उठाता फिर भी जो काम उसके धनुष से होता है सो वहां की स्त्रियों के कटाक्षों से होता है क्योंकि उनके नैनबाणों से कोई कामी बच नहीं सक्ता (कहते हैं कि कामदेव का धनुष फूलों का, बाण कलियों के, प्रतिञ्चा भौंरों की है)॥

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ॥
यस्योद्याने कृतकतनयः कान्तया वर्द्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ ७४ ॥

वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना कमलमुकुलैः स्निग्धवैदूर्य्यनालैः ॥
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ ७५ ॥

७४ स्तवकः = गुच्छः ॥

७५ व्यपगतशुचः = अकलुष जलत्वाद् वीत दुःखा ॥

७४ यक्षराज भौंनन तें उत्तर की ओर नेक
ताही अलका में सौत मन्दिर हमारो है।
दूरतें पिछान्यो जात चित्र चारु तोरन तें
द्वार पै सजे जो मानो चाप इन्द्रवारो है।
ताके बाग बीच एक नूतन मन्दारवृक्ष
मेरी तीय पाल्यो मानि पुत्र सौ दुलारो है।
गुच्छन के भार तें झुकी हैं डार डार आछी
आय जात हाथ फूल बीनत सुखारो है॥
७५ ताही भौन माहिं ताल सुन्दर बन्यो है एक
सीढ़ी लगीं हैं जामे मरकत शिलान की।
जातरूप कञ्ज की कलीन तें रच्यो है छाय
अद्भुत सजी हैं नाल नीले उपलान की।
आयके बसे हैं जेते राजहंस वाके नीर
नेक ना रही है चित्त चिन्ता आपदान की।
तोहू कों बिलोकि वे न यातें सुधि लावें नेक
निकट रहे हू मानसर के पयान की॥

७४ हे मेघ उसी नगरी में कुबेर के महलों से उत्तर ओर थोड़ी दूर मेरा घर है उसके द्वार पर रङ्ग बिरङ्गे तोरन (चित्र) ऐसे खिंचे हैं मानो इन्द्रधनुष रक्खा है आंगन के बगीचेमें एक मन्दार का वृक्ष है जिसको मेरी स्त्री ने पुत्र के समान पाला है वह कलियों से लदबदाकर ऐसा झुकता है कि उस के फूलों पर सहज ही हाथ पहुंचता है॥
७५ उसी बगीचे में पन्नों की सीढ़ियों का एक सुन्दर ताल है जो नीलम (नीलउपल) की डंडी के सुनहरी कमलों से छारहा है उसमें जिन हंसों ने आकर बास लिया है वे ऐसे सुखी हैं कि बरसात में भी मानसरोवर जाने की सुधि नहीं करते यद्यपि मानसरोवर वहां से निकट भी है (वरसात में देसके नदी नालों का पानी गदला होजाता है इस लिये राजहंस दुःखपाकर देस से मानसरोवर को चले जाते हैं)॥

यस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीड़ाशैलः कनककदलीवेष्टनः प्रेक्षणीयः ॥
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ ७६ ॥

रक्ताशोकश्चलकिशलयः केशरस्तत्र कान्तः
प्रत्यासन्नः कुरुवकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ॥
एकस्सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ॥ ७७ ॥

---

७७ अशोकवकुलयोः स्त्रीपादताडनगण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धिः ॥

श्लोकः। स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति वकुलः शीधु गण्डूष सेकात्
पदाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ॥
मन्दारो नर्म्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात्
चूतोगीतान्नमेरुर्विकसति च पुरोनर्तनात् कर्णिकारः ॥

७६ वाही ताल तीर पै हमारो बन्यो क्रीडाशैल
चोटी चारु जापै इन्द्रनील की सजाई है।
जातरूप केलन की बारि चहुंओर लगी
नैनन सुहाती भाती शोभा सरसाई है।
देखि देखि तोहि मीत सङ्ग चञ्चला के आज
तेरी उनहारि मोहि वाकी सुधि आई है।
जानत हूं प्यारो खरो मेरो बनिता को वह
आएँ सुधि होति चित्त यातें भीरुताई है॥

७७ मंडप है माधवीलता को रमनीक तहां
सुन्दर कुरे की बारि ओर पास छाई है।
नेरेहौ अशोक लाल सोहै लोल पल्लव लै
दूजी ओर केशर ह्व ठाडो सुखदाई है।
दोहद बहाने एक तेरी वा सखी को पांव
बायों छूयवे कों आस मेरी सी लगाई है।
प्यारीमुख आसब के लेनकाज दूसरे में

---

७६ उसी तालके तट पर हमारा क्रीड़ाशैल (मन बहलाने का पहाड़) है जिसकी शिखरमें बडे २ नोलम लगे हैं और ओरपास सुनहरी केलों की सुन्दर बाड़ है जब मैं तुझे बिजली चमकाता देखता हूं तो ध्यान ऐसा बंधता है मानो वही पहाड़ सामने खड़ा है वह मेरी प्यारी का प्यारा है इस लिये सुधि आने पर मेरा हृदय कंप जाता है॥

७७ उस पहाड़ पर चमेली का एक झाड़ है जिसके चारों ओर कुरे की बाड़ लगी है और पास ही एक वृक्ष रक्त अशोक का है जिसके हिलते हुए पत्ते शोभायमान दीखते हैं और दूसरा वृक्ष बकुल का है दोहद (फूलने की चाह) का मिस करके इनमें से पहला तो मेरी भांति मेरी प्यारी का बायां पांव छूना चाहता है और दूसरा उसके मुख का रस लेने को मेरी ही सी आकांक्षा रखता है (लोक प्रसिद्ध बात है कि जबतक सौभाग्यवती स्त्री का बायां पैर न लगे अशोक नहीं खिलता और जब तक ऐसी ही स्त्री

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनीवासयष्टि-
र्मूलेबद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ॥
तालैशिञ्जद्वलयसुभगैः कान्तया नर्त्तितो मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्व वः ॥ ७८ ॥

एभिस्साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथाः
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ॥
मन्दच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्य्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥ ७९ ॥

गत्वा सद्यः कलभतनुतां तत्परिचाणहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः ॥
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्त्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ ८० ॥

---

७९ शङ्खपद्मौ = पद्मोऽस्त्रियां महापद्मः शङ्खो मकरकच्छपौ
मुकुन्दनन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥
अभिख्या = शोभा ॥

८० कलभः = करिशावकः ॥
निभां = समानां ॥

ताही मिस मेरी भांति लालसा समाई है ॥
७८ उनही के बीच में बन्यो है खम्भ कञ्चन को
पटुली सु जापै धरी फटिकशिला की है।
मूल में जड़ी हैं कनी चोखी चारु पन्नन की
सोहै छवि आछी नए बांस मंजुला की है।
आयकै विराजे तापै नीलकण्ठ तेरो मीत
बेला जब होति भानु खण्डितकला की है।
प्यार सों नचावे ताहि मेरी प्रानप्यारी नित्त
दैदै झनकीली ताल कंकन छला की है॥

दोहा

७९ इन चिन्हन पहचानियो मेरो बगर सुजान
शंख पद्म द्वारें लिखे करि तिनहू पै ध्यान ॥
अब तो मो बिन होयगो वह घर शोभाहीन
अस्त भयें जिमि भानु के बारिजबन छविछीन ॥
८० गज शिशु सम लघु बनि तुरत ममप्यारी हित लाय
क्रीड़ागिरि पै बैठियो जो मैं दियो बताय ॥
भवन बीच चपला चमक मन्दी कीजो मीत

अपने मुखका कुल्ला न डाले अथवा मुखसे न छूऐ बकुल नहीं फूलता)॥
७८ उन वृक्षों के मध्य में एक सोने का खम्भ है जिस पर बिल्लौर की चौकी रक्खी है और जड़ में पन्ने जड़े हैं मानो नये हरे बांस लगे हैं उसी चौकी पर सांझ के समय तेरा सखा मोर आकर बैठता है और मेरी स्त्री उसे कंकन बजती हुई ताल देकर नचाती है॥
७९ इन चिन्हों से तू मेरा घर जान लीजो और दूसरा चिन्ह यह है कि द्वार पर शङ्ख और पद्म निधियों के रूप लिखे हैं मेरे बिना वह घर शोभाहीन होगा जैसे सूरज के बिना कमल का ताल॥
८० जो तू बड़ा रूप धर के जायगा तो मेरी प्यारी डरेगी इस लिये हाथी के बच्चे के समान छोटा बनकर उस क्रीड़ाशैल पर जिसका मैं वर्णन कर चुका हूं बैठियो और बिजली

तन्वी श्यामा शिखरदशना पक्वबिम्बाधरौष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ॥
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ ८१ ॥

तां जानीयाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ॥
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् ॥ ८२ ॥

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निश्श्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरौष्ठम् ॥
हस्ते न्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्त्ति ॥ ८३ ॥

८१ शिखरः =दाडिमवीज सदृश रत्नमणि विशेषः ॥

८२ परिमित कथां = मितभाषिणीम् ॥

८३ उच्छूननेत्रं =सशोथ नयनं ॥

लसति पांति जुगनू मनो अबला होइ न भीत ॥

८१ बिम्बाधर दाडिमदशन निम्ननाभि कृशगात
बसति तहां मृगलोचनी युवति छीनकटि तात ॥
श्रोणिभार अलसानगति झुकनि कछुक कुचभार
मानहु ललनासृष्टि में मुख्य रची करतार ॥

८२ ताहि सजन घन जानियो मेरो आधो जीउ
रहति अकेली मो बिना चकई ज्यों बिनपीउ ॥
मितभाषिनि उत्कण्ठिता बिरह कठिन दिन जात
शीत हनी जिमि कमलिनी औरहि रूप दिखात ॥

८३ रोइ रोइ सूजे सखा वा प्यारी के नैन
ताती स्वासन तें रह्यो वह रंग होठन पै न
खुले बार कर पै धस्यो आनन कछुक लखात
ज्यों घनघेरयो चद्रमा छवि मलीन दिखरात

भी ऐसी थोड़ी चमकाइयो जैसी जुगुनुओं की पांति होती है

८१ उसी घर में मेरी स्त्री मिलेगी जिसके ओठ बिम्बा फल से, दांत अनार के दाने से, नाभि गहरी, शरीर दुबला, आंख चकित हरिनी को सी और कमर पतली है वह नितम्बों के बोझ से चलने में कुछ अलसाती है और कुचों के वोझ से कुछ झुकी सी रहती है निदान ऐसी है मानो स्त्रियों की सृष्टि में बिधाता ने सब से उत्तम उसी को बनाया है ॥

८२ उसी को तू मेरी अर्धाङ्गिनी जानियो मेरे बिना वह ऐसे रहती होगी जैसे चकवे के बिना अकेली चकई और बिरह के इन कठिन दिनों में वह थोड़ा बोलनेवाली बहुत दुःखी होगी जैसे शीत की मारी कमलनी ॥

८३ रोते रोते उसको आंखे सूज गईं होंगी और तत्ती स्वास लेते लेते होठों का रंग फीका पड़ गया होगा खुले बालों में हाथ पै रक्खा हुआ उसका मुख ऐसा छबिछीन दीखता होगा जैसे उनमन में मलीन चद्रमा ॥

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यंविरहतनुताभावगम्यं लिखन्ती ॥
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्त्तुः स्मरसि निभृते त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ ८४ ॥

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातु कामा ॥
तन्त्रीरार्द्रा नयन सलिलैस्सारयित्वा कथञ्चि-
द्भूयो भूयस्स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥ ८५ ॥

शेषान् मासान् गमनदिवसस्थापितस्यावधेर्व्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीमुक्तपुष्पैः ॥
संयोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहे ह्यङ्गनानां विनोदाः ॥ ८६ ॥

---

८४ पुरा = सद्यः ॥
बलिव्याकुला = देवताराधनेषु तत्परा ॥
निभृते = हे एकाकिनी, हे एकान्तवासनी ॥

८५ मद्गोत्राङ्कं = मम कुलचिन्हितं ॥
स्वयमपिकृतां = विस्मरणानर्हामपि ॥

८६ देहली मुक्तपुष्पैः = प्रोषित कुशलार्थं मासे मासे देहल्यां
समर्पितानि यानि पुष्पानि तैः ॥

सोरठा

८४ धरणि गिरेगी मित्र वलि देती वह देखि तुहि
कै लिखती मम चित्र बिरह कृशित अनुमान करि ॥
कै कहुं पूछति होइ पिंजरा बैठी सारिकहि
कबहु आवति तोहि सुधि प्यारी वा नाह की ॥

८५ कै धरि बैठी बीन मलिनबसन जंघान पै
गावन काज प्रबीन अङ्कित पद मम गीत कुल ॥
अंसुवन भिजई रोइ कै बीना कों पोंछती
कैधों भूलति होइ फिर फिर सीखी तान हू ॥

८६ कै मन करन प्रतीत रहे महीना अवधि के
गिनि गिनि धरती मीत सुमन देहरी के चढ़े ॥
कै साधति संजोग मम आगम अनुमान करि
येही नारि नियोग होत नाह के विरह में ॥

८४ हे मेघ वह तुझे देखते ही मेरी ओर से निरास होकर गिरपड़ेगी चाहे उस समय मेरी कुशलता के लिये काकवलि पूजन करती हो चाहे विरह की पीड़ा में मेरा दुबलापन अनुमान करके मेरा ही चित्र बनाती हो चाहे पिंजरे में बैठी हुई मैना से पूछती हो कि तुझे भी कभी प्यारे नाह की सुधि आती है ॥

८५ चाहे वियोग की दशा में मैले वस्त्र पहने हुए बीन जांघ पर रखकर मेरे कुल के गीत गाने बैठी हो और आंसुओं से भीगी बीना को पोंछती हो चाहे भली भांति अभ्यास की हुई मूर्छना को भी बार बार भूलती हो ॥

८६ चाहे शाप की अवधिके रहे हुए महीने निश्चय करने के लिये धरती पर रख रख कर देहली के चढ़े हुए फूल गिनती हो (परदेशी की कुशल निमित्त महीने महीने देहली पर फूल चढ़ाये जाते हैं) चाहे अपने मन ही मन मुझे घर आया जान संजोग के उपचार करती हो क्योंकि पति के वियोग में स्त्री बहुधा येही धन्धे करती रहती हैं ॥

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्व्विनोदां सखीं ते ॥
मत्सन्देशैस्सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां सन्नवातायनस्थः ॥ ८७ ॥

आधिक्षामां विरहशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ॥
नीता रात्रिः क्षणमिव मया सार्द्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहजनितैरश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥८८ ॥

निःश्वासेनाधरकिशलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात् परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ॥
मत्संयोगःक्षणमपि भवेत् स्वप्नजोऽपीतिनिद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ ८९ ॥

८७ मत्सन्देशैस्सुखयितुमलं = ममवार्ताभिस्तामानन्दयितुं समर्थः ॥

८८ शुद्धस्नानात् = तैलादिरहित स्नानात् ॥

चौपाई

८७ लगी रहति इन कामन प्यारी। दिन बिरहादुख होत न भारी॥
डरों अधिक रातिन दुख होई। करन काज जब काज न कोई॥
तू मम दूत तासु हितकारी। रहियो बैठि अर्धनिशि बारी॥
लखियो नारि पतिब्रत करती। बिगतनीद शय्या करि धरती॥
८८ चिन्ताबिथित परी तन छीना। एक करोट सेज पतिहीना॥
जिमि पूरब दिश देत दिखाई। कलामात्र निकस्यो शशि आई॥
छिन समान बीततिहीं रतियां। मो सङ्ग करत केलि रसबतियां॥
रोइ रोइ अब तिनहिं बितावति। बिरहतप्त आंसू बरसावति॥
ताती स्वास भईं तियमुख की। दायकस्फुट होठन अति दुखकी॥
फूंकि फूंकितिजसों सरकावति। रूखी अलक कपोलन धावति॥
चाहति तनक नींद झुकि आवे। मति सपने अपनो पति पावे॥
पै अंसुवा नैनन भरि लेहीं। लगन पलक छिन हू नहिं देहीं॥

८७ दिन भर तो इन कामों में लगी रहने से उसे वियोग की बिथा बहुत न व्यापती होगी परन्तु मुझे डर है कि रात में जब कोई काम नहीं रहता वह अति दुःख पाती होगी तू मेरा संदेसा पहुंचा कर उसे प्रसन्न करेगा परन्तु आधी रात के समय खिड़की (बारी) में बैठकर देखियो वह किस भांति नींद त्याग भूशय्या पर पड़ी हुई पतिब्रत साधती है॥
८८ विरह की चिन्ता में दुर्बल होकर धरती की सेज पर अकेली पड़ी हुई ऐसी दीखेगी मानो अंधेरे पाख की चौदस का चन्द्रमा निकला है और जो रात मेरे साथ रमण करने में छिन समान बीत जाती थीं तिन्हे अब रोरो कर तत्ते आंसू गिराती हुई काटती होगी॥
८९ लम्बी और तत्ती स्वास लेते लेते नए पल्लव समान उसके होठ सूज गए होंगे उन्ही स्वासों से मुख पर पड़ती हुई रूखी अलकों को बार बार हटाती होगी और मुझे सपने में देखने के लिये चाहती होगी कि पल भर भी नींद आजाय परन्तु आंसू छिन मात्र भी सोने न देते होंगे॥

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा या मयोद्वेष्टनीया ॥
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं
गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ ९० ॥

पादानिन्दोरमृतशिशिरान् जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्व्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव ॥
चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥ ९१ ॥

सा सन्न्यस्ताभरणमबला कोमलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद्दुःखदुःखेन गात्रम् ॥
त्वामप्यश्रुं जललवमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायःसर्व्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ ९२ ॥

९० दाम हित्वा = मालां त्यक्त्वा ॥

९१ स्थल कमलिनी = भूपद्मिनी न तु नीर कमलिनी ॥

९० बिरहा प्रथम दिवस मृगनैनी । बिनमाला बांधी जो बैनी ॥
मेरे हि हाथन खोलन जोगू । शाप अन्त जब रहे न सोगू ॥
भई कठोर गई न संवारी । परति कपोलन पै दुखकारी ॥
सरकावति फिर२ अंगुरिन तें । नख न बने जिनके बहु दिन तें ॥

९१ शीतल अमृत किरनि हिमकरकी। परति आइ झझरिन बिच घरकी॥
पूर्वप्रीति हित तिहिं लंगधावत । तुरत नैन पाछे हटि आवत ॥
सजल पलक तिनऊपर लावति।बस बियोग अतिशय दुख पावति॥
खन सोवति जागतिसी खन में । भूमिकमलिनी जिमि उनमनमें॥

दोहा

९२ सेज परे कोमल खरे बिन आभूषण गात ।
राखति अबला होइगी परी बिकल बिलखात ॥
तेरेहू आंसू सखा देगी अवश बहाय ।
सरस हृदय जन होत हैं बहुधा मृदुल स्वभाय ॥

९० वियोग के पहिले दिन जो बिना माला की बेनी बांधी थी और शाप के अन्त पै मेरे ही हाथों से खुलेगी वह बेनी तब से शुद्ध नहीं की गई है इस लिये कड़ी होगई होगी और कपोलों पर गिर कर दुःख देती होगी उसे प्यारी अपनी अंगुलियों से जिनके नुह बढ़ रहे हैं बार बार सरकाती होगी ॥

९१ संयोग समय की प्रीति मान कर उसके दृग पहले तो झरोखों में पड़ी हुई चन्द्रकिरनों को ओर दौड़ते होंगे फिर बियोग के दुःख में लौट आते होंगे और प्यारी उन को अपने सजल पलकों से ढांकती हुई कुछ सोती कुछ जागती ऐसी दीखती होगी जैसे उनमन में स्थलकमलिनी ॥

९२ अपने कोमल शरीर को जिसके आभूषन उतार डाले हैं वह बड़े दुःख से धारन करती होगी उसकी दशा देखकर तू भी रोदेगा क्योंकि तू सरस हृदय है (अर्थात् तुझ में जल भरा है) और सरस हृदय पुरुष बहुधा करुणामय होते हैं ॥

जाने सख्यास्तव मयि मनस्सम्भृतस्नेहमस्मा-
दित्थम्भूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ॥
वाचालं मां न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्भ्रातरुक्तं मया यत् ॥ ९३ ॥

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ॥
त्वय्यासन्ने नयनमुपरि स्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाकुलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ९४ ॥

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरविरचितं त्याजितो दैवगत्या ॥
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः कनककदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥ ९५ ॥

---

९३ सुभगम्मन्यभावः = आत्मनस्सुभगमानित्वं ॥

९४ नयनं = वाममिति शेषः ॥
वाम भागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः
दाने देवादि पूजायां स्पन्देऽलङ्करणेपि च ॥
श्रीतुलाम् = श्रीसादृश्यं ॥

९३ जानतु हूं मोमें लगो वाके मन की प्रीति।
यातें प्रथम वियोग में ऐसी करतु प्रतीति॥
अपनबड़ाई करि कछू मैं न बजावतु गाल।
बेगि तुह्न लखि लेहिगो मेरो कह्यो हवाल॥

९४ बिन अञ्जन सूनो भयो अलकन रोकी सैन।
बिन मदिरा भूल्यो सबै सूबिलास सुख दैन॥
दृग बांयो मृगनयनि को हलि है पहुंचत तोहि।
मीन झकोर्‍यो जलज जिमि शोभा भासति मोहि

९५ वाम उरू वा वाम की मम नखअंक विहीन।
नितकी मुक्ताकिंकिनी विधिवशात् तजदीन॥
सहरावन के जोग वह मेरे हाथन मीत।
कंचन कदलीखम्भ लों फरकेगी रंगपीत॥

९३ मुझे निश्चय है कि उसका मन मुझ में स्नेह रखता है इसी लिये मैं जानता हूं कि उसकी दशा ऐसी होगी जैसी मैंने कही है तू यह मत समझ कि अपने को सुभग मान कर मैं अपनी बड़ाई करता हूं मैंने जो कुछ कहा है तू आप ही थोड़े काल में देख लेगा॥

९४ अञ्जन बिना नेत्र सूने होंगे कपोलों पर बार२ अलक पड़नेसे तिरछा देखना छुट गया होगा मदिरा त्यागने से भौहों का चमत्कार जाता रहा होगा जब तू निकट पहुंचेगा तो उसका बायां नेत्र अच्छा शगुन दिखलाने को फड़केगा उस समय ऐसी शोभा होगी मानो कमल को मछली ने हिलाया है॥

९५ उसकी बांई जांघ भी जिस पर मेरे नुह के चिन्ह मिट गए होंगे और बहुत दिनों को पहनी हुई तागड़ी दैवयोग से उतारी गई होगी और जिसको मैं अपने हाथों से सहलाता था ऐसे फड़केगी मानो सोने का वा केले का खम्भ हिलता है॥

तस्मिन् काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्यात्
तत्रासीनः स्तनितविमुखो याममात्रं सहेथाः ॥
माभूदस्याः प्रणयिनिमयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्
सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ ९६ ॥

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ॥
विद्युत्कम्पस्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरस्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥ ९७ ॥

'भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं ।।
'तत्सन्देशान्मनसि निहितादागतं त्वत्समीपम्
'यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
'मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणि मोक्षोत्सुकानि' ।।९८ ।।

९७ सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् = मालतीनां नूतन मुकुलैस्सह ॥

९६ ता छिन यदि सोवति मिले सुखनिद्रा वह बाल।
मौन गहे बैठ्यो तहां तू रहियो कछु काल॥
मेरे गल बाहीं दिये मति सपने में होइ।
गरज सुनत तेरी जलद सो सुख देइ न खोइ॥

९७ फिर जल शीतल पवन करि दीजो वाहि जगाय।
मृदुल मालती कलिन संग प्रफुलित चित ह्वै जाय॥
चमकत बारी मांहि तुहि लखि है दीठि उठाय।
तब तू बातें मन्दधुनि यों कहियो समझाय॥

शिखरनी

९८ 'सखा तेरे पीको जलद प्रिय मैं हूं पतिवती।
'संदेसो लै वाको तव निकट आयो सुनि सखी।
'चलें मेरी मन्दी धुनि सुनि बिदेसी तुरत ही।
'करें बाञ्छा खोलें पहुंचि घर बेनी तियन की॥

---

९६ यदि वह सोती मिले तो तू थोड़ी बेर चुपचाप बैठा रहियो कहीं ऐसा न हो कि तेरे गरजने से जग पड़े और सपने में जो मुझ से मिलाप हुआ हो उस का सुख खो दे॥

९७ फिर प्रातःकाल जब तू ठंडी पवन चलाकर चमेली की कलियों को खिलावे उसे भी जगा कर प्रफुलित चित्त कीजियो तुझे बिजली सहित खिड़की में बैठा देखकर वह निश्चल नेत्रोंसे तेरी ओर निहारेगी तब तू उस्से मन्दी ध्वनि गरज कर यों कहियो॥

९८ 'हे सौभाग्यवती मैं तेरे पति का मित्र बादल हूं उसका संदेसा तेरे पास लाया हूं 'मेरी गरज में यह गुण है कि परदेसियों को तुरन्त अपने अपने घर जाने का चाव 'दिलाती है और उनके मन में चाह उठाती है कि घर पहुंच कर अपनी अपनी 'स्त्री की बेनी खोलें॥

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैवम्॥
श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपगतस्सङ्गमात् किञ्चिदूनः॥ ९९॥

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्त्तुं
ब्रूया एवं 'तव सहचरो रामगिर्य्याश्रमस्थः॥
'अव्यापन्नः कुशलमवले पृच्छति त्वां वियुक्तां
'भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत्' ॥ १००॥

९९ सम्भाव्य = सत्कृत्य॥

१०० क्षयिषु करणेषु = नश्यमानेषु शरीरेषु॥ यच्चांस्वपि महाप्रलये विनश्यन्तीतिभावः॥

चौपाई

९९ इतनो कहत तोहि मम प्यारी। जिमि हनुमत कों जनकदुलारी॥
सीस उठाय निरखि घन लैहै। प्रफुलित चित ह्वै आदर दैहै॥
सुनिहै तिहिं बिधि कान लगाई। तेरे बचन सुभग सुखदाई॥
सुहृद हाथ तिय पियसुधि पावति। सो मिलाप तें कछु घटि भावति॥

१०० मम बचनन निज बचन मिलाई। यों वासों कहियो समझाई॥
'छेम सहित भरता तिय तेरो। करत रामगिरि माहिं बसेरो॥
'पूछत है तेरो कुशलाता। कहि बिरहिनि अपनी तू बाता॥
'प्रानी सबहि काल के भोगू। प्रथमकुशल ही पूछन जोगू'॥

---

९९ जब तेरा ऐसा वचन सुनेगी वह सिर उठा कर तुझे देखेगी जैसे राम के दूत हनुमान को सीता जी ने देखा था और मन में वैसा हो आदर भी देगी और वैसा ही ध्यान लगा कर तेरा कहना सुनेगी क्योंकि स्त्री को जो आनन्द पति के मिलाप से होता है उस्से कुछ ही घाट उसका संदेसा किसी मित्र के हाथों पाने से भी होता है॥

१०० फिर मेरे बचनों को अपने बचनों से बनाकर उस्से यों कहियो 'हे युवती तेरा पति रामगिरि पर्वतपर कुशलसे रहता है और तेरी कुशल पूछता है, संसार में जितने देहधारी हैं काल सब के सिर पर है इस लिये पहिले कुशल पूछना ही योग्य है'॥

' अङ्गेनाङ्गं सुतनुतनुना गाढतप्तेन तप्तं
' साश्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ॥
' दीर्घोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्त्ती
' सङ्कल्पैस्ते विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ' १०१ ॥

' शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
' कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ॥
' सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य-
' स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह' ॥ १०२ ॥

१०२ इदम् =वक्ष्यमाणम् ॥

घनाचरी

१०१ 'कीनो बिधि बैर रोकि दीनो पन्थ आवन को
'दूर पै बसायो जाय कैतो पछतायो है ॥
'चित्त की उमङ्ग तेरे अङ्गन मिलावे अङ्ग
'दूबरी तुहू तौ वह दूबर सवायो है ॥
'बिरहा तपाई देह दीरघ तू लेति स्वांस
'दोऊ इन बातन में तोतें अधिकायो है ॥
'तेरे उतकण्ठ गात नीर जात नैनन तें
'बाढ़ी अभिलाषा वह आंसू झरलायो है' ॥

छप्पय

१०२ 'प्रगट कहन हू जोग बात सखियन के आगे ॥
'तो मुख परसन लोभ कहतु हो कानन लागे ॥
'पस्यो दूरि अब जाय दृष्टि जहं पहुंचि न पावति ॥
'श्रवन सुनन गति काम जहांतनकहु नहिं आवति ॥
'स्वामि शाप बस पाय के उत्कण्ठित निश दिन रहत ॥
'तोहि सुनावन बचन ये रचि रचि सो मुख तें कहत' ॥

---

१०१ 'बिधाता ने बैर करके तेरे पति को परदेश का वास दिया है और घर आने 'का मार्ग रोक दिया है मन की उमंग में वह अपने अंगों को तेरे अंगों से मिलाता 'है तू दुबली है वह तुझ से भी अधिक दुबला है तू विरह की ताप में लम्बी और 'तत्तो स्वास लेती है वह तुझ से भी अधिक लंबी और तत्ती स्वास लेता है तू 'उत्कण्ठितगात है उस में तुझ से अधिक उत्कण्ठिता है तेरे आंसू गिरते हैं उस के 'आंसुओं की झड़ी लगी है' ॥

१०२ 'तेरे कपोल चूमने के लालच वह सखियों के सामने कहने की बात भी तेरे कानों में 'कहता था अब इतना दूर पड़ा है कि न वहां दोठि पहुंचती है न कानों की गति है 'तेरे सोच में उदास रहता है और तुझे सुनाने को यह पद बना कर मुझे दिये हैं' ॥

"श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षिते दृष्टिपातान्
"गण्डच्छायं शशिनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्॥
"उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
"हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति" ॥ १०३ ॥

"त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
"मात्मानं ते चरण पतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम्॥
"अश्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
"क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः" ॥ १०४ ॥

"धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य वाले
"दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पञ्चवाणः क्षिणोति॥
"घर्म्मान्तेऽस्मिन् विगणय कथं वासराणि व्रजेयु-
"र्दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्य्यातपानि" ॥ १०५ ॥

---

१०३ श्यामा = प्रयङ्गुलता॥

१०४ कृतान्तः = दैवम्॥

१०५ घर्मान्ते = घर्म्मावसाने॥

दिक्संसक्तः प्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि = दिक्षु संलग्ना ये मेघा विस्ततैस्तै-र्वारितातपानि वासराणि॥

शिखरनी

१०३ "मिलै भामा तेरो सुभग तन श्यामालतन में।
"मुखाभा चन्दा में चकित हरिणी में दृग मिलें।
"चलोर्मी में भोहें चिकुर बरही की पुछन में।
"न पै हा काहू में मुहि सकल तो आकृति मिलै" ॥

१०४ "शिला पै गेरू तें कुपित ललना तोहि लिखिकै।
"धरचो जौलों चाहूं तन अपन तेरे पगन में।
"चलें आंसू तौलों दृगनमग रोकें उमगि कै।
"नहीं धाता घाती चहतु हम याहू बिधि मिलें" ॥

१०५ "परचो हू मैं तेरे सुखद मुख तें दूर युवती।
"खरी छेदे मेरे कृशित तन हूं कों रतिपती।
"कटैं कैसें प्यारी दिवस अब बर्षा ऋतु लगी।
"मिटी भानुज्ज्वाला उमड़ि घनमाला नभचढ़ी" ॥

१०३ "हे प्यारी तेरे कोमल शरीर की शोभा प्रयंगुलताओं में मिलती है मुख की कान्ति "चन्द्रमा में आंखों की चितवन चकित हरिणियों में भौंहों की मरोड़ नदी की "चंचल तरंगों में केशों की छबि मोरपुच्छ में परन्तु हाय तेरे सब अंगों की सूरत "कहीं नहीं मिलती" ॥

१०४ "तुझ मानवती का चित्र पत्थर पर गेरू से लिख कर जब तक मैं अपने को तेरे "चरणों में रखना चाहता हूं तब तक आंखों में आंसू भर आते हैं और दीठ रुक "जाती है इस्से जान पड़ा कि हमारे चित्र मिलाप को भी बिधाता नहीं सह "सकता" ॥

१०५ "मैं तेरे सुगन्धित मुख से दूर हूं फिर भी कामदेव मेरे दुबले शरीर को अपने "बानों से छेदता है अब वर्षा ऋतु लगी है बादल उमड़े हैं धूप मन्दी होगई है "प्यारी ये दिन कैसे कटेंगे" ॥

"मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
"र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु ॥
"पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
"मुक्तास्थूलास्तरुकिशलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति" ॥ १०६ ॥

"भित्वासद्यः किशलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
"ये तत्क्षीर स्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ॥
"आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
"पूर्व्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति" ॥ १०७ ॥

"सङ्क्षिप्येत क्षणमिव कथं दीर्घयामात्रियामा
"सर्व्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ॥
"इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्ल्लभप्रार्थनं मे
"गाढ़ोष्णाभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः" ॥ १०८ ॥

---

१०६ स्थलीदेवता = वनदेवता ॥
तरुकिशलयेषु = वृक्षपत्रेषु ॥
यथा ॥ महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि ।
देशभ्रंशो महादुःखं मरणञ्चभवेत् ध्रुवम् ॥

१०६ "जु तू प्यारी मोकों मिलति कहुं भावी स्वपन में।
"भुजा ऊंची दोऊ करि चहतु लागूं तव गरें।
"दशा ऐसी मेरी निरखि बनदेवा दृग भरें ।
"बड़े डारें आंसू पतन पर मोती जिमि झरें" ॥

दोहा

१०७ "दक्खिन मुख आवति चली मिलि तुसार संग ब्यारि।
"देवदारुपुट तोरती तिहिंरस सोंधी सारि॥
"सो अपने भरि अङ्क में या हित लेतु लगाय।
"नागरि तो तन परसि मति मो तन परसै आय" ॥

१०८ "चाहतु भारी रैन ह्व छिन समान कटि जायं।
"दिवस भोर तें सांझ लों बिन सन्ताप नसायं॥
"करि करि दुर्लभ आस ये मो मन भयो बिहाल।
"तेरे कठिन बियोग में सुनि मृगनैनी बाल" ॥

---

१०६ "जो भाग्य से कभी तू मुझे स्वप्न में मिल जाती है तो तुझे कंठ लगाने को मैं बांह "पसारता हूं उस समय मेरी दोनदशा देख बनदेवताओं को ऐसी दया आती है कि "वे वृक्षों के पत्तों पर बड़ेबड़े आंसू गिराते हैं (पत्तों पर इस लिये कि पृथ्वी पर "देवता वा महात्मा का आंसू गिरने से प्रजा को दुःख उपजता है)" ॥

१०७ "उत्तर से जो ठंडी पवन देवदारु की कोंपलें तोड़ती और उनके दूध की सुगन्धि "लेती हुई आती है उसे मैं अपने अंक में भरता हूं क्योंकि आसा है कि कदाचित "तेरे ही शरीर को छूकर आई हो" ॥

१०८ "तेरे वियोग में मेरा मन ऐसा दीन होगया है कि दुर्लभ बातों की भी प्रार्थना "करता है अर्थात् चाहता है कि किसी जतन से रात पल बराबर हो जायं "और दिन सवेरे से सांझ तक किसी समय दुःखदाई न हों

"नन्वात्मानं बहुविगणयन्नात्मना नावलम्बे
"तत् कल्याणि त्वमपि सुतरां मा गमः कातरत्वम् ॥
"कस्यात्यन्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा
"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण" ॥ १०९ ॥

"शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
"मासानेतान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥
"पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
"निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु" ॥ ११० ॥

"भूयश्चापि त्वमसि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
"निद्रां गत्वा किमपि रुदती सत्वरं विप्रबुद्धा ॥
"सान्तर्हासं कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे
"दृष्टस्स्वप्ने कितव रमयन् कामपि त्वं मयेति" ॥ १११ ॥

---

१०९ बहुविगणयन् = शापान्ते सत्येवमेवं करिष्यामीत्यावर्त्तयन् ॥
अवलम्बे = धारयामि ॥

११० गुणितं = बहुली कृतं ॥
निर्वेक्ष्यावः = भोक्ष्यावहे ॥

सवय्या

१०९ "मैं अपनो तन राखि रह्यो धरि कै अभिलाष हिये बिच भारी।
"धीरज तूहु धरे किनि भामिनि जाइ मरी मति सोच की मारी।
"काहु पै दुःख सदां न रह्यो न रह्यो सुख काहु कै नित्त अगारी।
"चक्रनिमी सम दोऊ फिरें तर ऊपर आपनी आपनी बारी"॥

११० "मम शाप की औधि मिटै तबही जब शेषकी सेजपै जागें हरी।
"इन चार महीनन कों अब तू दृग मीचि बिताय दे भागिभरी।
"मिलि हैं फिर कातिकी रातिन में हम देखि हैं चांदनी चारुखरी।
"बुझि जायगी हैांस सबै जियकी बिरहा दुख जो दिनदूनी करी"॥

१११ "और कहूं सुनि एक दिना हियरा लगि मेरे तू सोइ रही।
"आवत नींद न बेर भई जगि औचक रोइ उठी तब ही।
"पूछी जु मैं धन बारहिं बार ता तैं मुसकाइ के ऐसें कही।
"देखतिही सपने छलिया तुमने एक सोति की बांह गही"॥

---

१०९ "हेप्यारी मैं तेरे मिलने के बडे बडे चाव करके अपने प्रान रख रहा हूं तू भी धीरज "धर दुःख सुख सदां किसी को एकसा नहीं रहता ये ता रथ की नेमि की भांति "फिरते फिरते रहते हैं"॥

११० "मेरे शाप को अवधिमें चार महीने और रहे हैं जब देवठान होगा हम फिर सुख से शरद को चांदनी रातों में मिलेंगे और जो मिलने की अभिलाषा हमारे हृदयों में "वियोग ने बहुत बढ़ा दी है वह पूरी होगी इन महीनों को तू आंख मीच कर "बिता दे"॥

१११ "एक दिन की सुधि मैं तुझे दिलाता हूं कि तू मेरे गले लगकर सोती थी अकस्मात् "जगकर रोने लगी मैंने बार बार पूछा कि क्यों रोई तैंने हंस कर उत्तर दिया कि "हे छलिया सपने में तुझे किसी स्त्री से मिलते देखा था॥

"एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
"माकौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनीभूः ॥
"स्नेहानाहुः किमपि विरहव्यापदस्ते ह्यभोग्या
"दृष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति" ॥ ११२ ॥

कच्चित् सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि ॥
निश्शब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ११३ ॥

आश्वास्यैनां प्रथमविरहादुग्रशोकां सखीं मे
शैलादस्मात् त्रिणयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ॥
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ ११४ ॥

---

११२ कौलीनः =जनप्रवादः ॥ एतावताकालेन परासुर्नोचेदागच्छतीतिभावः ॥

११३ प्रत्यादेशात् = अनङ्गीकारात् ॥
धीरतां =तूष्णीम्भावं ॥
प्रतयुक्तमिति= नीचो वदति न कुरुते न वदति सजनः करोत्यवेतिभावः ॥

११२"प्राय पते इतने मृगलोचनि जानिलै जीवत है पति तेरो।
"लोग लुगाइन को चरचा सुनि तू विसवास तजे मति मेरो।
"नेह की रीति बडेन कही कुम्हलात कछू जब मीत न नेरो।
"भोग बिना अभिलाष बढ़ावत चिन्ह लखें बढ़ि जात घनेरो"॥

दोहा

११३ बन्धु काज मम तैं इतो स्वीकृत कियो कि नांहि।
नटन शंक तव मौन तें नैक न मो मन मांहि॥
तू बिनबोलेहू बरसि मेटत चातक प्यास।
सज्जन जन उत्तर यही पुजवत याचक आस॥

चौपाई

११४ दै धीरज मेरी पतिनी कों। प्रथम बिरह व्याकुल सजनीकों॥
चलियो तुरत जलद वा गिरितें। खोदी चम्बक वृषभ शिखिरितें॥
लाइ प्रिया की कछुक निसानी। अरु वा मुख की कुशल कहानी॥
मेरेहु प्रान राखियो ताता। भये मलिन जिमि कुन्द प्रभाता॥

११२ "हे प्यारी इन पतोंसे तू निश्चय रख कि मैं जीता हूं और जो पार पड़ोसी चरचा करें "कि जीता होता तो अब तक आजाता अथवा कुछ संदेशा भेजता उनकी बात पर "तू विश्वास मत कीजो नेहका स्वभाव है कि वियोग में कुछ मलीन हो जाता है "परन्तु फिर भी चावको बढ़ाता है और प्यारे का पता पाकर बहुत बढ़जाता है"॥

११३ हे मेघ मेरे संदेशे का पहुंचाना तैंने स्वीकार किया हो वा न किया हो तेरे चुप रहने का कारण मैं यह नहीं समझता हूं कि मेरी प्रार्थना तैंने अङ्गीकार नहीं की क्योंकि तू तो बिना गरजे भी चातकों को प्यास बुझाता है और सज्जन पुरुष उत्तर दिये बिना ही याचकों की आसा पूरी कर देते हैं॥

११४ मेरी स्त्री को जो पहले ही बिरह की विथा में फंसी है मेरे संदेशे से ढ़ाड़स देकर और कैलाश पर्वत से जिस की शिखर को शिवजी का नादिया अपने सींगोंसे खोदा करता है उतर कर तू मेरे पास आना और उसकी कुछ निसानी लाना जैसे मेरा संदेसा पहुंचाकर उस के प्रान बचावेगा उस की कुशल सुनाकर मेरे भी कुम्हलाते हुए प्रान बचा लीजो॥

एतत्कृत्वा प्रियसमुचितं प्रार्थनं चेतसो मे
सौहार्द्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ॥
इष्टान् देशान् विचर जलद प्रावृषा सम्भृतश्रीः
मा भूदेवं क्वचिदपि न ते विद्युता विप्रयोगः ॥ ११५ ॥

तं संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽऽचचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ॥
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्त्तुः
केषां नस्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥ ११६ ॥

श्रुत्वा वार्तां जलद कथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयस्संविधायास्तकोपः ॥
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पतीहृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥ ११७ ॥

इत्युत्तरमेघः

११५ प्रावृषासम्भृतश्रीः =वर्षाभिरुपचितशोभः ॥
विद्युता =कलत्रेणेति शेषः ॥

११५ कै बिरही कै सखा सुमिरिके। दयादृष्टि मो ऊपर करिके॥
पूरन कीजो बिनती मेरी। सब बिधि उचित सुहृद्जन केरी॥
चलियो फिर मनमें जित आवै। पावस सुखमा सङ्ग सुहावै॥
पलहु न बिज्जु बिरह होइ तोकों। जैसो भयो शापबस मोकों॥

दोहा

११६ जक्षवधू कुशलातहित धरि हिय मित्रउछाह।
कह्यो संदेसो जाय यह दिव्य वचन जलवाह॥
पाइ कुशल भरतार को हरषी वह मन माहिं।
करि सज्जन सों बीनती को तुष्यो जग नाहिं॥

शिखरनी

११७ सुनीएती बातें धनपति जु भाषी जलद की।
दया जी में आई रिस मिटत ताहीछिन भई।
मिलाए वे दोऊ विपति हरिलीनी शपथ की।
सदां भोगी बाञ्छाफल हरषि यों आशिस दई॥

इति उत्तर मेघ

११५ मुझे बिरही जान कर अथवा अपना मित्र समझकर दया सहित मेरा यह कामकर दीजो यह मित्रों के करने ही योग्य है इसको भुगता कर जहां जी चाहे वरषा से शोभा पाता हुआ फिरियो और जैसा वियोग मुझे अपनी स्त्री से हुआ है तुझे पल भर भी तेरी प्यारी बिजली से मत हूजो ॥

११६ यक्षिनी के प्रान बचाने को मित्र काज के उत्साही बादल ने वह संदेसा उस को देववानी से सुनाया पतिकी कुशल सुनकर वह भी प्रसन्न हुई। सज्जनों से किस की प्रार्थना सफल नहीं हुई॥

११७ अलका में जब मेघ के कहे हुए इस संदेसे की चरचा फैली और कुवेर के भी कान तक पहुंची तो उसके हृदय में करुणा आई, कोप दूर होगया फिर तुरन्त उसने शाप की अवधि मिटा कर यक्ष यक्षनी को मिलाया और असीस दी कि सदां मन बाञ्छित फल भोगते रहो॥

॥ इति शुभम्॥
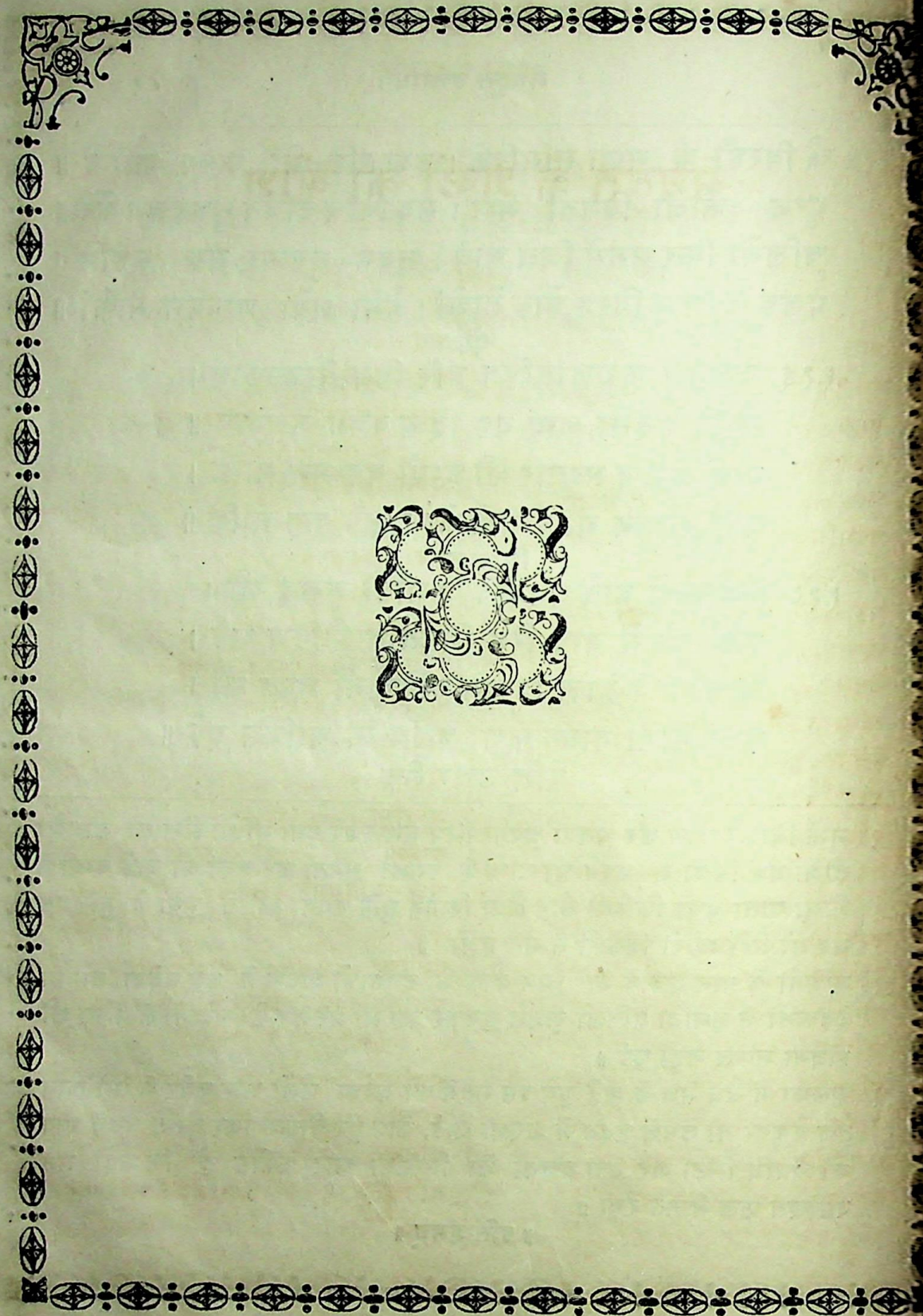
मेघदूत के शब्दों का कोश।

अ

अंश
अंस } =कन्धा। (भाग, खण्ड)

अंशुक=पत्ता, कपड़ा। (बहुवचन अंशुकानि)।

अकरोत्=किया।

अग्र=आगे, अगला भाग। चोटी, मुंडेली।

अग्रभूमि=आंगन।

अङ्क=चिन्ह। (अङ्कित,चिन्हित) गोद।

अङ्ग=शरीर, देह।

अङ्गना=स्त्री।

अचल=पहाड़।

अचिरात्=थोड़ेही काल में।

अचेतन=जड़, जीवरहित।

अच्छ=विमल, स्वच्छ।

अजिन=खाल, चर्म।

अट्टहास=खिलखिला के हंसना जिसमें दांत दिखाई दे जांय

अतः=इसकारण, इसलिये।

अतिक्रम्य=उलांघ कर, आगे बढ़कर।

अतितराम्=अत्यन्त।

अतिथि=पाहुना।

अतिशय=बहुत।

अतीत=उलांघा हुआ।

अत्यादित्य=सूरज से भी अधिक तेजस्वी।

अदृश्य=अलख, जो दीखे नहीं।

अद्रि=पहाड़।

अद्रेः=पहाड़का।

अद्रौ=पहाड़ में

अद्रिग्रहणगुरुभिः=[विशेषण गर्जितैः का] पहाड़ की प्रतिध्वनि से बढ़ा हुआ।

अधम=नीच।

अधर=नीचे का होठ।

अधः=नीचे की ओर।

अधिः=ऊपर, अधिक।

अधिकार=कास, उहदे का काम।

अधिगुण=अच्छे गुणवाला, सज्जन।

अधिवसेः=ऊपर बैठियो तू।

अधीन=आधीन।

अधुना=अब।

अध्यास्ते=ऊपर बैठता है

अध्वन्=मार्ग।

अध्वश्रमविनयने=(वि० श्रङ्गे) मार्ग की थकावट मिटानेवाले पर।

अनपेक्ष्य=ध्यान न देकर, अपेक्षा न करके।

अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः=(वि० मणिभिः) नये बांस के समान कान्तिमान्।

अनभिज्ञ=अजान, अज्ञान, न जानने वाला।

अनल्प=बहुत।

अनिभृत=ढीठ, निर्लज्ज।

अनिभृतकरेषु=(वि० प्रियेषु) ढीठ हैं हाथ जिनके।

अनल=अग्नि।

अनिल=पवन।
अनु=पीछे, पीछे पीछे।
अनुकच्छम् =कछार में, खादर में।
अनुकनखलम्=कनखल के समीप।
अनुकूल=हितकारी।
अनुकृति=होड, विडम्बना।
अनुक्रोश=दया, दयालुता। [निन्दा]
अनुग / अनुचर =पीछे चलने वाला। चाकर, चेरा
अनुरूप=अनुकूल, जैसा भावे
अनुविद्ध=जड़ा हुआ।
अनुसर=पीछें चलना।
अनुसरण=बीचमें पड़ना।
अन्तःशुद्ध=भीतर से शुद्ध।
अन्तर=भीतर। बीच
अन्तरशुद्धि=हृदय की शुद्धता।
अन्तरात्मा=हृदय, मन।
अन्तर्भवन=भीतर का घर।
अन्तर्वाष्पः= (वि० अनुचरः) हृदय में हैं आंसू जिसके
अन्तस्ताप=हृदय का दुःख।
अन्तस्तोयम् / अन्तस्सारम् [वि० त्वम्] भीतर है जल जिसके।
अन्य=और, दूसरा।
अन्यथा=और भांति।
अप्=पानी।
अप=परे, दूर।
अपगम=चलाजाना, मिटजाना
अपनयन=मिटाना।
अपरिगणयन्=न गिनता हुआ, न बिचारता हुआ।

अपाङ्ग=आंखका बाहरवाला कोया, आंखकी नोक।
अपाङ्गप्रसर=कटाक्ष, तिरछी चितवन।
अपाय=दूर होना, मिटना।
अपि=भी।
अपेक्षा=चाह।
अप्रतीकार=न रोकना।
अबल=निबल, दुबला।
अबला=स्त्री।
अभाव=न होना।
अभिख्या=शोभा।
अभिगम=मिलाप।
अभिज्ञान=चिन्ह, पता।
अभिधा=नाम, पदवी।
अभिनव=नया।
अभिमत=प्यारा, मनभाया।
अभिमतरसाम्=[वि० हालाम्] मनमें भाया है स्वाद जिसका।
अभिमुखः=सामने, सन्मुख।
अभिराम=सुन्दर, शोभायमान।
अभिलाषी=चाहनेवाला।
अभिलीन=छाया हुआ, मिला हुआ।
अभिलुलित=हिलता हुआ।
अभिसार=स्त्री का अपने पति वा प्रीतम से मिलने को जाना।
अभूत्=हुआ।
अभोग्य=भोगने के योग्य नहीं।
अभ्यन्तर=भीतर।
अभ्यषिञ्चत्=छिड़कता हुआ।
अभ्यसूय=कुपित, क्रोधित।
अभ्युद्यत=उपस्थित, उद्योग करने वाला।

अभ्युपेत=स्वीकार किया हुआ।
अभ्युपेतार्थकृत्याः=स्वीकार की है प्रार्थना जिन्होंने
अभ्येति=सामने आता है।
अभ्र=बादल।
अभ्रंलिह=बादल चाटने वाला अर्थात् बहुत ऊंचा।
अभ्रंलिहाग्राः=[वि०प्रसादाः] बादल चाटने वालीं हैं शिखर जिनकी।
अमर=देवता।
अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्=[वि० अवस्थाम्] देवताओं के जोड़ों के देखने योग्य।
अमुम्=इसको, उसको
अमृत=अमर, सुधा।
अमोघ=सफल, जो निष्फल न हो।
अम्बु, अम्भस्=पानी।
अम्बुवाह=बादल।
अम्भोबिन्दुग्रहणरभसान्=[वि० चातकान्] पानी की बूंद लेने में तत्पर।
अयम्=यह।
अयमित=बिना कटा हुआ, बिना बना हुआ।
अयमितनखेन=[वि० करेण]बिनाबने हैं नह जिसके।
अरण्य=वन।
अर्घ=आदर निमित्ति सामग्री।
अर्घ्य=अर्घ के योग्य।
अर्चिस्=लौ।
अर्थ=प्रयोजन, वस्तु, याचना।
अर्थम्=निमित्त, लिये।
अर्थित्व=अर्थीपन, मंगतापन।
अर्द्ध=आधा।
अर्द्धरूढ़म्=आधा निकला हुआ।
अर्द्धेन्दुमौलिः=शिवजी, महादेवजी [आधा चन्द्रमा है मुकुट जिसका।
अर्हसि=तुमि योग्य हो]।
अलक=बालों की लट।
अलकत्व=लट का धर्म।
अलका=यक्षों की पुरी का नाम।
अलकान्त=लट का सिरा।
अलङ्घ्य=जो उलांघा न जा सके।
अलम्=बस, समर्थ।
अलस=आलस, शिथिलता।
अल्पाल्प=थोड़ा थोड़ा।
अल्पाल्पभासम्=[वि० दृष्टिम्] थोड़ी थोड़ी है चमक जिसमें।
अवकाश=अवसर।
अवकीर्ण=फैला हुआ, बिखरा हुआ।
अवतंस=करनफूल।
अवतीर्ण=उतरा हुआ।
अवधि=अन्त।
अवधूत=हिलाया हुआ।
अवनत=झुका हुआ।
अवनि=पृथ्वी।
अवनिशयनाम्=[वि० साध्वीम्] पृथ्वी है शय्या जिसकी।
अवन्ती=उज्जयन नगरी।
अवलम्ब=लटकाव, आधार।
अवलम्बे=धारण करता हूं मैं।
अवलेप=घमंड, गर्व।
अवश्य=निश्चय करके।
अवस्था=दशा।
अवहित=ध्यान लगाए हुए, एकाग्रचित्त।

अविकल=सम्पूर्ण।
अविधवा=सुहागिनि, सौभाग्यवती।
अविरत= निरन्तर, लगातार।
अविरतोत्कण्ठम् =[वि० अङ्गम्] निरन्तर है चाव जिसमें।
अविश्वासिन्=जिसको भरोसा न हो।
अविहित=विना रोका हुआ।
अव्यापन्न=जीता हुआ।
अशरण=विना आसरे, निराधार।
अशस्त्र=विना हथ्यार।
अशिशिर=तत्ता।
अशोक=वृक्ष विशेष।
अस्र, अश्रु } आंसू।
अश्रुद्रुतम्=(वि०अङ्गम्) आँसुओं से भीगा हुआ
अष्टांग=आठहैं अङ्ग जिसमें।
असकल=थोड़ासा।
असकलव्यक्ति=[वि० मुखम्] कुछ एक दीखता हुआ
असकृत=बारबार।
असहन=जो सह न सके।
असि=है तू।
असित=काला (जोस्ति त न हो)
असितनयन=काली आंख वाला।
असुखिन्=जो सुखी न हो अर्थात् दुखी।
असौ=वह।
अस्त=नीचे गया हुआ, छुपा हुआ।
अस्तकोपः=[वि० धनेशः] जिस का कोप दूर हो गया है।
अस्तम्=छुपा हुआ, नीचे गया हुआ।
अस्ति=है वह।
अस्थान= अपनी जगह से बाहर।
अस्पृशन् =न छूता हुआ।
अस्मदीय= मेरा, हमारा।
अस्मात् =इसलिये।
अस्मि =हूं मैं।
अस्मिन्= इसमें।
अहन् =दिन।
आ =पर्यन्त, तक [जैसा यहां तक, वहां तक]।
आकाङ्क्षन्= चाहता हुआ।
आकाशप्रणिहितभुजम् =[वि० माम्] आकाश की ओर बांह उठाए हुएको।
आकुल =भरा हुआ, व्याकुल।
आकुलग्रामचैत्याः =[वि० दशार्णाः]पक्षियोंसेभरे हुए हैं रख्यावृक्ष जिनके।
आकृति =आकार, मूरत।
आक्षिपत्= पकड़ताहुआ, खींचता हुआ जैसे कपड़ेको
आखण्डल =इन्द्रदेवता।
आख्या= नाम, पद।
आख्यात= कहा हुआ।
आख्येय =कहने के योग्य।
आगत =आयाहुआ।
आगम= आना।
आगार =घर।
आघात= लगना, चोट।
आघ्राय= सूंघकर।
आतप =धूप,घाम।
आतपात्र =छत्र।
आत्मन =आप।

आत्माभिलाष = मन की चाह।
आददानः = लेता हुआ।
आदि = इत्यादि, और भी, प्रथम।
आद्य = पहला, प्रथम।
आधान = गर्भ।
आधि = हृदय का दुःख, मन की विथा।
आनन = मुख।
आपः = पानी।
आपन्न = दुःखी।
आपन्नार्त्तिप्रशमनफलाः = (वि० सम्पदः) दुखियों की पीड़ा का मिटाना ही है फल जिनका।
आपृच्छस्व = पूछले तू, आज्ञा लेले तू।
आबद्ध = बांधा हुआ।
आबद्धमालाः = [वि० बलाकाः] मालासी बांधे हुए।
आभरण = गहना, आभूषण।
आभा = शोभा।
आभोग = अगला शरीर।
आमन्द्र = मन्दीध्वनि।
आमोक्ष्यन्ति = डालेंगी, फेंकेगी।
आमोद = सुगन्ध।
आम्र = आम, अम्बाफल।
आम्रकूट = एक पहाड़ का नाम है जिसपर आम के वृक्ष बहुत हैं।
आयत्त = आधीन।
आयाम = लम्बा।
आयुष्मन् = बड़ी आयुवाले तुम।
आरम्भ = उद्योग, नये काम का चलाना।
आराध्य = पूजकर।
आरुह्य = चढ़कर।
आरूढ़ = चढ़ा हुआ।

आरोहण = चढ़ना।
आर्त्त = दुःखी।
आर्त्ति = दुःख।
आर्द्र = गीला, आला, कोमल।
आलप्स्यते = पावेगा।
आलम्बन = सहारा, आधार, आसरा।
आलम्भ = वध करना, मारना। बलिदान
आलम्भजाम् = बध से उत्पन्न हुई को।
आलिख्य = लिख कर।
आलिङ्गन = छाती से लगाना।
आलिङ्गित = छाती से लगाया हुआ।
आली = पंक्ति, लकीर, सखी।
आलुप्यते = धुंधला होना।
आलेख्य = चित्र
आलोक = दृष्टि, देखना।
आवर्ज्य = छोड़कर, फिराकर, लौटाकर।
आवर्त्त, आवर्त्तक = भंवर।
आवली = पंक्ति।
आवाम् = हम दोनों।
आविर्भूत = प्रगट हुआ।
आविर्भूतप्रथममुकुलाः = [वि० कन्दलीः] पहली कली दिखलाई दी हैं जिनकी।
आशाबन्ध = भरोसा, निश्चय।
आशा = भरोसा, दिशा।
आशिस् = आशीर्वाद।
आशु = तुरन्त।
आश्रम = ठौर, जगह।
आश्रमस्थ = आश्रमों में फिरने वाला।

आश्लिष्ट=लगा हुआ।
आश्लिष्टसानुम्=[वि० मेघम्] शिखर पर लगा हुआ।
आश्लेष=मिलना।
आश्वसत्=ढांड़स देता हुआ।
आश्वसन्त्यः=प्रफुलित चित्त स्त्री, ठांडस पाई हुई स्त्री।
आश्वास्य=ढांडस देकर।
आसन्न=निकट।
आसादयत्=प्राप्त करना।
आसार=मूसल धार मेह।
आसारप्रशमितवनोपप्लवम्=[वि० लाम्] मूसलधार मेह से मिटाई है वनकी पीड़ा जिसने।
आसीन=बैठा हुआ।
आसेवन्ते=सेवन करते हैं।
आस्वाद=स्वाद।
आह=वह कहता है।
आहुः=वे कहते हैं।
आहत= पीटा हुआ, बजाया हुआ।

इ

इच्छा=चाह।
इच्छामि=चाहता हूं मैं।
इतः=इधर।
इति=इस प्रकार।
इत्थम्=इस भांति।
इत्थम्भूत=इस भांति हुआ।
इदम्=यह।
इन्दु=चन्द्रमा।
इन्दुप्रिया=चन्द्रकान्तमणि।
इन्दोः=चन्द्रमा का।
इन्दुलग्नोर्मिहस्ता=[वि० या] चन्द्रमा से लगे हैं, तरङ्ग रूपी हाथ जिसके।
इन्द्रचाप=इन्द्रधनुष।
इन्द्रनील=नीलम, मणिविशेष।
इव=ऐसा।
इष्ट=चाहा हुआ, मन भाया [बहुवचन इष्टान्]।

ई

ईक्ष्यमाण=दीखता हुआ।
ईप्सित=चाहा हुआ।
ईश, ईश्वर=स्वामी।

उ

उक्त=कहा हुआ।
उग्र=बड़ा, तीक्ष्ण।
उग्रशोक=भारी दुःख।
उच्चैः=ऊंचा, बड़ा
उच्चैर्भुजतरु=[वि० वनम्] ऊंचे वृक्ष ही हैं भुजा जिनकी।
उच्छिलीन्ध्र=कठफुला, कुकरमुत्ता।
उच्छिलीन्ध्रातपत्राम्=[वि० महीम्] कठफुला है छत्र जिसका।
उच्छून=सूजा हुआ।
उच्छ्राय=ऊंचाई, चोटी।
उच्छ्वसित=खुला हुआ। श्वासलेता हुआ। [प्रफुलित।
उच्छ्वास=श्वास।
उच्छ्वासित=श्वास लेते लेते थका हुआ, खोला हुआ हिलाया हुआ।
उच्छ्वासिन्=ऊंची श्वासों से भरा हुआ।
उडुम्बर=गूलर।

उत्=ऊपर, दूर।
उत्क=चाह भरा हुआ [बहुवचन उत्काः]।
उत्कण्ठा=चाव।
उत्कण्ठित=चाव में दुखी।
उत्कण्ठाविरचितपदम्=[वि० इदम्] चाव में रचे गए हैं पद जिसके॥
उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया=[वि० सा] चाव से फूला है हृदय जिसका।
उत्कम्प=कांपना।
उत्कषण=हलसे जोतना, उपाड़ना।
उत्क्षेप=फेंकना, ऊपर की ओर उठाना।
उत्खात=खोदा हुआ।
उत्तर, उत्तराशा=उदीची दिशा।
उत्तम=बहुत अच्छा, सुन्दर।
उत्तमस्त्रींसहायाः=[वि० यक्षाः] सुन्दर स्त्री हैं साथ जिनके।
उत्तीर्य्य=उतरकर।
उत्थाप्य=उठाकर, जगाकर।
उत्थित=उठा हुआ, जगा हुआ।
उत्पत=ऊपर को उठ तू।
उत्पल=नीला कमल।
उत्पश्यामि=सोचता हूं मैं।
उत्पाद्य=उत्पन्न करके।
उत्पीड=दवा कर निकाला हुआ।
उत्सङ्ग=गोद।
उत्सर्ग=निकलना।
उत्सुक=चाह भरा हुआ।
उत्सेक=बहुतात, बहुलता, बढ़ती।
उदक्=उत्तर दिशा।
उदक=पानी।
उदङ्मुख=उत्तर ओर मुख है जिसका।
उदञ्च, उदीची=उत्तर दिशा।
उदन्त=संदेशा।
उदय=उठना।
उदयन=नाम है एक राजा का (अर्थात् वत्सराज)।
उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धाम्=[वि०अवन्तीम्] उदयन की कथाओं का तत्व जाननेवालों के समूह करके बड़ी जो हैं।
उद्गातुम्=गानेको।
उद्गातुकामा=गाने की इच्छामान स्त्री।
उद्गार=उगाल।
उद्गारिन्=उगलता हुआ जैसे पानी को अथवा भापको।
उद्गीर्ण=उगला हुआ।
उद्गृहीत=पकड़ कर उठाया हुआ।
उद्गृहीतालकान्ताः=(वि० वनिताः) ऊपर को उठाए हैं अलकों के छोर जिन्होंने।
उद्घट्टन=घिसना, रगड़ना।
उद्दाम=बेमर्य्याद, खुलेबन्धन।
उद्दिष्ट=कहा हुआ, दिखलाया हुआ।
उद्धूत=हिलाया हुआ, भड़काया हुआ।
उद्धूतपापाः=[वि० श्रद्दधानाः] हिल गए हैं अथवा दूर हुए हैं पाप जिनके।
उद्यत=तय्यार, उपस्थित।
उद्यान=उपवन, बगीचा।
उद्वर्त्तन=उछलना।
उद्वह=पुत्र।
उद्वेग=भय, उत्कण्ठा।
उद्वेष्टनीय=खोलने योग्य।
उन्निद्र=जाती रही है नींद जिसकी।

उन्मुख=ऊपर को ओर मुख है जिनका ।
उन्मेष=आंख का थोड़ा चमकना ।
उप=निकट, पास ।
उपकर्त्तुम्=उपकार करने को, सहारा देने को ।
उपकार=सहारा ।
उपगत=मिला हुआ, पास पहुंचा हुआ ।
उपगम=पास पहुंचना ।
उपगूढ़=छाती से लगाना ।
उपचित=इकट्ठा किया हुआ, बढ़ाया हुआ, रचा हुआ
पचितरसाः=[वि० ते] बढ़ी हुई अभिलाषवाले ।
उपचितवलिम्=(वि चरणन्तासम्) की गई है पूजा जिसकी ।
उपचितवपुः=[वि० लम्] बढ़े हुए अङ्गवाला ।
उपजिगमिषु=पास जाने का इच्छामान ।
उपतट=किनारा, तट ।
उपपाद्य=किये जाने के योग्य ।
उपप्लव=दुःख, पीड़ा ।
उपमेय=उपमा के योग्य ।
उपयुज्य=लेकर, पीकर ।
उपरि=ऊपर ।
उपल=पत्थर ।
उपहार =भेट पूजा ।
उपवन=बगीचा ।
उपान्त=निकट, तट ।
उपेक्षित=त्यागता है ।
उर्व्वी=पृथ्वी ।
उल्का=चिनगारी, पतंगा ।
उल्काक्षयितचमरीवालभारः=(वि० दवाग्निः) चिनगारियों से जला दिये हैं चमरी मृगों की पूंछके बाल जिसने ।

उल्लङ्घित=उलांघा हुआ ।
उष्ण=तत्ता ।

ऊ

ऊन=थोड़ा घाट ।
ऊरू=जांघ ।
ऊर्द्धम्=ऊपर को, आगे को ।
ऊर्मि, ऊर्म्मी=जल की तरंग, लहर ।

ए

एकपत्नी=पतिव्रता ।
एकवेणी=सब बालों का एक जूड़ा ।
एकस्थ=इकट्ठा ।
एकान्ततः=अकेला, निरन्तर ।
एतद्=यह ।
एत्य=पहुंचकर, आकर ।
एनम्=इसको, उसको ।
एभिः=इन्होंने ।
एव=निश्चय करके ।
एवम्=इस प्रकार ।
एषु=इनमें ।
एष्यति=जायगा ।

ऐ

ऐरावत=इन्द्र का हाथी ।
ऐश्वर्य्य=प्रभुता ।

ओ

ओघ =प्रवाह, नदी का बहाव ।
ओष्ठ =होठ, बहुधा ऊपर का होठ ।

औ

औत्सुक्य=उत्सुकता, चिन्ता ।
कः=कौन ।

क

कः=कौन।

ककुभ =वृक्षविशेष अर्थात् अर्जुन।

कच्चित्=निश्चय करके क्यों कर।

कटाक्ष=तिरछी चितवन।

कण=बूंद।

कणिका=छोटी बूंद।

कण्ठ=गला।

कण्ठच्छविः=(वि० त्वम्) गले की छवि है जिसमें।

कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि=(वि० उपगूढम्) छुट गई हैं गले से बांह लता की गांठ जिस में।

कतिचित्=कितने एक।

कतिपय=कितने, कुछ एक।

कतिपयदिनस्थायिहंसाः=(वि० दशार्णाः) कुछ दिन हंसों के ठैरने योग्य।

कथञ्चित्=किसी भांति।

कथम्=क्योंकर।

कथमपि=किसी भांति भी, कठिनाई से।

कथयत्=कहताहुआ, बतलाता हुआ।

कथा=कहानी, इतिहास।

कथित=कहा हुआ।

कदम्ब=वृक्ष विशेष।

कदली=केला

कनक=सोना, सुवर्ण।

कनककदलीवेष्टनः=(वि० शैलः) सुनहरी केलों से घिरा हुआ।

कनकनिकषच्छायया=(वि० सौदामिन्या) चमकती हुई मानो कसौटी पर सोने की लकीर।

कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्टः=(वि० कामी) सोने का भुजबन्द गिरकर सूनी होगई है बांह जिसकी।

कन्दर=गुफा।

कन्दली=फूल विशेष।

कन्या=लड़की।

कपाल=मुण्ड।

कपिश=कपासी रंग।

कपोल=गाल।

कमलवदन=कमल सा है मुख जिसका।

कम्प=हिलना जैसे (बिजली हिलती है)

कर=हाथ, किरण, सूंड।

करका=ओला।

करण=इन्द्री, शरीर।

कररुध=किरनों का रोकनेवाला।

कररुह=हाथ की अंगुली का नुह।

करिन्=हाथी।

करुणा=दया।

करुणार्द्रवृत्ति=(वि० अन्तरात्मा) कोमल स्वभाववाला।

करोति=करता है।

कर्ण=कान।

कर्तुम्=करने को।

कल=मन्दी ध्वनि।

कलत्र=स्त्री।

कलधौत=सोना।

कलभ=हाथी का बच्चा, हाथी की सूंड।

कला=चन्द्रमा के मंडल का सोलहवां भाग।

कलामात्रशेषाम्=(वि० तनुम्) एक कलामात्र बची हुई।

कलित=खिलाहुआ।

कल्प=स्वर्ग का वृक्ष।

कल्पन्ते=योग्य होते हैं।

कल्पित=बनाया।

कल्पितार्घार्य = (वि० तर्क्षे) बनाया है अर्घ जिसके लिये।

कल्याण = सुख, पुन्य।

कल्याणी = भाग्यवती।

कल्हार = कमल।

कश्चित् = कोई।

कषाय = सुगन्धित।

कस्य = किसका।

कस्याच्चित् = किसी में।

काङ्क्षति = चाहता है।

काञ्चन = सोना।

काञ्ची = तागड़ी।

कातर = निरुत्साही, दहलाया हुआ।

कातरत्व = निरुत्साहीपन, बोदापन।

कानन = वन।

कान्त = शोभायमान।

कान्तः = पति।

कान्ता = स्त्री, प्यारी। वियोग करके कठिन।

कान्ताविरह गुरुणा = [वि० शापेन] स्त्री के।

कांति = शोभा।

कान्तिमत् = शोभायमान।

काम = चाहना, इच्छा।

कामचारी = जहां चाहे तहां जासके।

कामपि = [कां अपि] किसी एक स्त्री को।

कामरूप = इच्छारूप धारन करनेवाला।

कामिन् = कामी, प्रेमी, स्नेही।

कामिनी = प्रेमवती स्त्री, सुन्दर स्त्री।

कामुकत्व = प्रेमीपन, कामीपन।

कारण = हेतु।

कार्श्य = दुबलापन।

काल = समय।

किंस्वित् = क्या (आश्चर्य से पूछना)।

किञ्चित् = कुछ, थोड़ासा।

कितव = छलिया।

किन्नरी = किन्नर की स्त्री [किन्नर एक जाति के देवता हैं जो स्वर्ग में गाते] हैं।

किमपि = कुछ थोड़ा सा।

किम्पुनर् = फिर क्या कहना है।

किल = निश्चय, कदाचित

किशलय = पुठ, कोंपल।

कीचक = पोला बांस।

कीर्त्ति = नामवरी, यश।

कुञ्ज = वृक्ष समूह।

कुटज = वृक्षविशेष।

कुन्द = फूलविशेष।

कुपित = रिस भरा हुआ।

कुमुद = श्वेत कमल, कमोद।

कुरुवक = फूलविशेष।

कुरुवकवृतः = (वि० मण्डपस्य) कुरुवक से घिरेहुए का।

कुरुष्व = करियो तू।

कुर्व्वत् }
कुर्व्वन् } = करता हुआ।

कुल = समूह झुंड।

कुलिश = वज्र।

कुवलय = कमल।

कुश = घास विशेष, दाभ।

कुशल = क्षेम, निपुण।

कुशलिन् = प्रसन्न, क्षेम सहित।

कुसुम = फूल।

कुसुम्भ=कसूम।
कूजित=पक्षियों का बोल।
कूट=पहाड़ की चोटीं।
कृत / कृतक = किया हुआ, बनाया हुआ।
कृतवसतयः(=वि० हंसा) बनाया है घर जिन्होंने।
कृतान्त=विधाता, दैव, यम।
कृत्त=कटा हुआ।
कृत्ति=खाल, चर्म।
कृत्य / कृत्या = काम।
कृत्वा=करके।
कृपण=मतहीन, मूर्ख, लोभी, दीन।
कृश=दुबला।
कृषि=खेती।
कृष्ण=काला, विष्णु, भगवान।
कृष्णसार=करसायल, अर्थात् काला हरिण।
क्लृप्त=बनाया हुआ, सजाया हुआ।
क्लृप्तच्छेदैः=(वि० पुष्पैः अथवा नलिनैः) टुकड़ों से बनाया हुआ।
के=कौन।
केका=मोर की कूक।
केतक=केतकी।
केतकाधानहेतोः=(वि०तस्य) केतकीके गर्भका हेतु।
केशपाश=बालों का जूड़ा।
केशर=वृक्ष विशेष, बकुल, फूल का रुआं।
केशव=कृष्ण।
कैलास=नाम पहाड़।
कोटर=वृक्षकी खखोडर।
कोमल=नरम।
कोविद=पंडित।
कौतूहल=अचम्भा, नई बात जाने की इच्छा।
कौरव=कुरु की सन्तान।
कौलीन=बुरी चर्चा।
क्रम=सीढ़ी।
क्रशित=दुबला।
क्रिया=काम।
क्रीड़ा=खेल।
क्रीड़ालोलाः =(वि० ताः) खेल में मग्न।
क्रूर=क्रोधी।
क्रौञ्चरन्ध्र=नाम है एक घाटी का जिसमें हो कर हंस आते जाते हैं।
क्लान्त=थका हुआ।
क्लान्तहस्ताः=(वि० वेश्याः) थके हाथोंवाली।
क्लिष्ट=दुःखी, मलीन।
क्लिष्टकांतिः=(वि० इन्दोः) मलीन है छवि जिसकी।
क्लेशिन=दुःख देनेवाला।
क्व=कहां।
क्वचित्=कहीं।
क्वणित=बजता हुआ। झनकारता हुआ।
क्षण=छिनमात्र।
क्षत्र=क्षत्री, राजा, छाता।
क्षपयति=मिटाता है।
क्षपा=रात।
क्षम=समर्थ, निपुण।
क्षय=होले होले मिटना, घटना।
क्षयित=घटा हुआ, बिगड़ा हुआ, नाश किया हुआ।
क्षयिन्=मिटनेवाला, दुर्बल, नाशमान।
क्षाम=दुबला, घटा हुआ।
क्षिणोति=घायल करता है, छेदता है,
क्षिप्त=फेंका हुआ, फैलाया हुआ।

क्षीण – दुबला, लटा हुआ।
क्षीर – दूध, रस।
क्षुद्र – छोटा।
क्षेत्र – खेत।
क्षेप – फेंकना, बिताना, समय बिताना, फूलों का गुच्छा।
क्षेमतर – बहुत प्रसन्न।
क्षोभ – हिलना, चलायमान होना, कोप।

ख

ख – आकाश।
खग – पक्षी।
खचित – जड़ा हुआ।
खण्ड – टुकड़ा, भाग।
खण्डिता – वह नायका जिसका पीतम दूसरी स्त्री के पास रहकर भोर घर आवे।
खद्योत – जुगनू, पटबीजना
खलु – निश्चय।
खिन्न – दुःखी, थका हुआ।
खिन्नविद्युत्कलत्रः – (वि० भवान) थकी है बिजली-रूपी स्त्री जिसकी।
खेद – दुःख, पीड़ा।

ग

गगन – आकाश।
गगनगतयः – [वि० ते] आकाश में चलने वाले अर्थात् देवता।
गङ्गा – गङ्गाजी भागीरथी।
गङ्गासागर – गङ्गा और समुद्र का संगम।
गच्छत् – चलता हुआ।
गच्छन्तीनाम् – चलती हुइयों का।
गज – हाथी॥
गण – महादेव के सेवकों का समूह।
गणना – गिनती।
गण्ड – गाल, कनपटी, कपोल।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम् – [वि० मुखानाम्] कपोलों का पसीना पोंछने की पीड़ा से कुम्हला गए हैं कानों के कमल जिनके।
गत – गया।
गति – चलना, चाल।
गत्वा – जाकर, चलकर।
गन्तव्य – जाने के योग्य।
गन्ध – सुगन्ध, वास।
गन्धवती – नाम है एक नदी का।
गन्धिन् – सुगन्धमान।
गम – गया हुआ।
गमन – जाना।
गमय – बिताइयो तू।
गमित – गया हुआ, खोया हुआ, गंवाया हुआ।
गमितमहिमा – (वि० यक्षः) गई है बड़ाई जिसकी।
गम्भीर – गहरा।
गम्भीरा – नाम है एक नदी का।
गम्य – जाने योग्य।
गर्जित – बादल की घोर
गर्भ – आधान।
गर्भाधानक्षमपरिचयम् – (वि० भवन्तम्) गर्भ धारन कराने की समर्थ है दर्शन जिस का।
गलित – गिरा हुआ।
गवाक्ष – गौख, झरोखा।
गाढ़ – गाढ़ा, कड़ा, बहुत बल से।
गाण्डीव – गाण्डी वृक्ष की लकड़ी का बना हुआ। अर्जुन का धनुष।
गाण्डीवधन्वन् – अर्जुन।

गात्र=शरीर।

गाहमान-ढांकता हुआ, छाता हुआ।

गिरि=पहाड़।

गीयते-गाया जाता है।

गुण-डोरी, लच्छन, स्वभाव, हेतु।

गुणवत्=अच्छे स्वभाववाला। गुणी।

गुणित्-बढ़ाया हुआ।

गुरु-भारी, बाप।

गुरुतर=बहुत भारी।

गुरुतरशुचम्=(वि०सखीम्) भारी है विथा जिसकी।

गुह्यक-यक्ष।

गृह=घर।

गृहबलिभुज-स्त्री का भोजन खानेवाला अर्थात् बगला वा कव्वा क्योंकि जब ये पक्षी अंडा सेते हैं इनकी स्त्री चुगा लाकर इन्हें खिलाती हैं।

गेय-गाने योग्य अर्थात् गीत।

गेहिनी=घरवाली, स्त्री।

गो-पृथ्वी, गाय।

गोत्र-कुल।

गोप=गौचरानेवाला।

गोपवेषस्य=(वि० विष्णोः) गौचरानेवालों कासा है भेस जिस का।

गौर=स्वेत, उज्वल।

गौरव=भारीपन, बड़ाई।

गौरी=पार्व्वती, शिवा।

ग्रथित=बंधा हुआ, गूंथा हुआ।

ग्रन्थि=गांठ, गिरह।

ग्रहण-पकड़ना।

ग्राम-गांव, समूह।

ग्लानि=घिन।

घ

घण्टिका=घंटी।

घन=बादल।

घर्म्म=घाम, धूप।

घर्म्मलब्ध-घाम में पाया हुआ।

घात=चोट मारना।

घोष=शब्द, शोर।

च

च=और, फिर।

चकित=अचंभे में आया हुआ।

चक्रवाकी-चकवी।

चक्र=गाड़ी का पहिया।

चक्रुः=किया उन्होंने।

चक्रे-किया।

चक्षुष्=आंख।

चचक्षे=कहा।

चञ्चत्=हिलता हुआ।

चञ्चला-बिजली।

चटुल-चंचल।

चण्ड=प्रचण्ड, कठोर। शोभायमान।

चण्डा-दुर्गा।

चण्डी-अधीरा, कुपितस्त्री। (दुर्गा)।

चण्डेश्वर-शिव, चण्डा का पति।

चतुर=चार।

चन्द्रकान्त-मणिविशेष।

चन्द्रचूड़=महादेवजी (चन्द्रमा है सिर पर जिसके)।

चन्द्रपाद-चन्द्रकिरन।

चन्द्रिका=चांदनी।

चमरी=एक प्रकार का हरिन है जिसकी पूंछ का चमर बनता है।
चमू=सेना।
चरण=पांव।
चरणन्यास=पांव का चिन्ह, चरण शिला।
चल=चलायमान।
चलत्वम्=फड़कना।
चलकिशलयः=(वि० अशोकः वा केशरः) चलायमान हैं कोंपल जिस को।
चलोर्मि=(वि० पयः) चलायमान लहर।
चाटु=लुरखरी, प्यारे वचन।
चाटुकार=वचन चतुर।
चातक=पपीहा।
चाप=धनुष।
चामर=चौंरी, चमर।
चारु=सुन्दर, शोभायमान।
चाष=नीलकण्ठ।
चिकुर=बाल, केश।
चिर=बहुत काल तक।
चित्रकूट=नाम है एक पहाड़ का।
चूड़ा=जूड़ा, चोटी।
चूर्ण=कुमकुम, पिसा हुआ चन्दन।
चेत्=यदि, जो।
चेतन=चैतन्य, जीव धारी।
चेतस्=चित्त।
चैत्य=रथ्या, गांव के पूज्यवृक्ष।
चौर=चोर।
च्युत=गिरा हुआ।

छ

छद्मन्=छल, मिस।
छन्न=ढका हुआ, छाया हुआ।
छन्नोपान्तः=[वि०अचलः]छाई हुई है सीमा जिसकी
छवि=शोभा।
छादयत्=छाता हुआ।
छायात्मन्=प्रतिविम्ब।
छायाभिन्न=बटा हुआ है प्रतिबिम्ब जिसका।
छिन्न=कटा हुआ।
छेद=टुकड़ा, तिलक।

ज

जगत्=संसार।
जघन=जांघ।
जन=मनुष्य।
जनहित=मित्र के लिये।
जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु=(वि० आश्रमेषु) जानकी जी के स्नानों से पवित्र हुआ है जल जिनका।
जनपद=देश, जनस्थान, जहां मनुष्य बसते हैं।
जनित=उत्पन्न किया हुआ।
जन्मन्=जन्म, उत्पत्ति।
जम्बू=जामन।
जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम्=(वि० तोयम) जामन की कुञ्जों में रुका है प्रवाह जिसका।
जय=जीत।
जर्ज्जर=जीर्ण, सुकड़ा हुआ, कटा हुआ।
जलद / **जलधर** =बादल।
जलदाभ=बादल कीसी है चमक जिसमें।
जलमुच् / **जललवमुच्** =बादल।
जवा=फूलविशेष।
जन्हु=नाम है एक राजा का और एक ऋषी का भी।
जातरूप=सोना।
जात=उत्पन्न हुआ।
जातविभ्रमाः=(वि०स्त्रियः) हुआ है अचम्भा जिन को अर्थात् चकित।
जानामि=जानता हूं मैं।
जाया=स्त्री।

जाल = जाली।
जालक = कली।
जीमूत = बादल।
जीवत् = जीता हुआ।
जीवित = जीव, आयु।
जुष् = मिला हुआ, धारण करता हुआ।
ज्ञातास्वादः = (वि० कः) जाना है स्वाद जिसने।
ज्ञास्यसि = जानेगा तू।
ज्या = प्रतिज्ञा, कमान का रोदा।
ज्योतिर्लेखावलयि = (वि० बर्हम्) तारों की पंक्ति का चक्र है जिसमें।
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि = (वि० स्थलानि) तारों की छाया रूपी फूल जड़े हैं जिनमें।
ज्योतिस् = तारा, चमक, आग।

त

तट = किनारा।
तड़ित् = बिजली।
तण्डुल = चांवल।
तत् = वह।
तत्पर = चित्त लगाये हुए।
तत्र = वहां, तहां।
तथा, तथैव = उसी भांति।
तद् = वह।
तदनु = उसके पीछे।
तनय = बेटा।
तनया = बेटी।
तनु = शरीर, दुबला।
तनुता = दुबलापन।
तन्तु = तार, सूत।
तन्तुजालावलम्बाः = (वि० चन्द्रकान्ताः) सूत की जाली हैं आधार जिनका अर्थात् जालियों में लटकती हुई।
तन्त्री = बीना।
तन्वी = पतली।
तप्त = तत्ता, तपा हुआ।
तम् = उसको।
तमस् = अंधेरा।
तरु = रूख, पेड़।
तर्कयामि = विचारता हूं मैं।
तर्कयेः = विचार करे अथवा चाहे तू।
तव = तेरा।
तस्मात् = तिस्से, तिसलिये।
ताः = वे स्त्रियां।
ताम् = उसको (स्त्रीलिङ्ग)।
तारक = तारागण।
ताल = ताली, (जैसे गाने में ताल दी जाती है)।
तावत् = तब तक।
तासाम् = उन स्त्रियों का।
तिक्त = सुगन्धित।
तिर्य्यञ्च, तिर्य्यक् = तिरछा।
तीर = तट, किनारा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगम् = (वि० पयः) तीर पर शब्द होने से शोभायमान है जो।
तीर्ण = उलांघा हुआ।
तुङ्ग = ऊंचा।
तुमुल = शोर, किलकिलाहट।
तुलयितुम् = होड़ करने को, बराबरी करने को।
तुला = बराबरी, समानता, ताखड़ी।
तुषार = पाला, सरदी, जाड़ा।
तुषाराद्रि = हिमालय पहाड़।
तूर्णम् = जल्दी।

तृण=घास, तिनका।
तृषा-प्यास।
ते=तेरा, वे।
तेजस्=तेज, प्रकाश, अग्नि।
तेन-तिसने, तिस लिये।
तोय-पानी, जल।
तोयद=बादल।
तोयोत्सर्गस्तनितमुखर:=(वि० त्वम्) मेह और गरज से शोभायमान।
तोरण-द्वार की चित्रकारी, बन्दनवार।
त्यक्त्वा-छोड़कर।
त्यज=छोड़।
त्रसत्-डरता हुआ।
त्रिणयन=शिव, तीन आंखवाला।
त्रिणयनवृषोत्खातकूटात्=(वि० शैलात्) महादेव के नान्दिये ने खोदी है शिखर जिसकी।
त्रिदश-देवता।
त्रिदशवनिता=देवता की स्त्री।
त्रिपुर==नाम है एक दैत्य का।
त्रिभुवन-तीन लोक।
त्रियामा=रात।
त्रिषु=तीनों में।
त्र्यम्बक=महादेवजी।
त्वत्त:=तुझ से
त्वत्प्रयाणानुरूपम्=(वि० मार्गम्) तेरे चलने के अनुकूल है जो।
त्वद्गम्भीरध्वनिषु-(वि० पुष्करेषु) तेरीसी गंभीर है ध्वनि जिनकी।
त्वन्निस्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्कपुण्य:=वि० वायु:) तेरी बूंदों से उठी हुई पृथ्वी की भाप से मिल कर जो सुगन्धित है।
त्वम्-तू।
त्वरयति=जल्दी चलाता है।
त्वरितम्-जल्दी से।
त्वादृश=तेरे समान, तुझ सरीका।

द

दक्षिणेन=दक्षिण की ओर।
दग्ध=जला हुआ।
दत्त=दिया हुआ।
दत्तनृत्योपहार:-(वि० त्वम्) दी है नाच रूपी भेंट जिस को।
दत्तमार्ग:=दिया है मार्ग जिसे अर्थात छोड़ा है मार्ग जिसके लिये।
दत्तहस्ता=(वि० गौरी) दिया है हाथ जिसे।
दत्वा=देकर।
ददर्श=देखा।
दधान=धारण करता हुआ।
दधि=दही।
दध्यौ=ध्यान किया।
दन्तिन्=हाथी।
दम्पति=स्त्री पुरुष का जोड़ा।
दयिता=प्यारी स्त्री।
दरी=गुफा।
दर्प=अभिमान, घमण्ड।
दर्पण=मुकुर, आदर्श, शीशा।
दर्शय=दिखला तू।
दर्शित=-दिखलाया हुआ।
दर्शितावर्त्तनाभे:=(वि० निर्विन्ध्याया:) दिखलाई है भंवर रूपी नाभि जिसने।
दल=पत्ता।
दव=वन।

दवाग्नि=दावानल, बन की आग।

दशन्=दस।

दशन=दांत।

दशपुर=नाम है एक नगर का।

दशमुख=रावण।

दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः=(वि॰कैलासस्य रावण की भुजाओं ने हिलाए हैं जोड़ जिसके।

दशा=अवस्था।

दशार्ण=नाम है एक देश का।

दाडिम=अनार।

दान=देना (हाथी का मद)।

दामन् } = रस्सी, माला।
दाम }

दायक=देनेवाला।

दाह=जलाना।

दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि = (वि॰ वासराणि) दिशाओं में लगे हुए बादल के फैलने से दूर हुआ है सूरज का आतप जिनमें।

दिङ्नाग=दिग्गज।

दिनकर=सूर्य।

दिव्=आकाश

दिव्य=आकाश का।

दिवस=दिन।

दिश्=दिशा।

दीर्घ=बड़ा, लम्बा।

दीर्घयामा=(वि॰त्रियामा) बड़े हैं पहर जिसके।

दीर्घोच्छ्वासम्=(वि॰अङ्गम्) लम्बो है स्वास जिसकी

दुःखदुःख=भारी पीड़ा।

दुकूल=वस्त्र, रेशमीकपड़ा।

दुर्लभ=कठिनाई से मिलनेवाला।

दुर्लभप्रार्थनम्=(वि॰चेतः) कठिन है आस जिसकी।

दूत=सदेसा लेजानेवाला, बसीठ।

दूर=जो निकट नहीं है।

दूरबन्धुः=(वि॰ अहम्) दूर हैं प्यारे जिसके।

दूरीभूत=दूर गया हुआ।

दूर्वा=दूब घास।

दृषद्=पत्थर।

दृष्ट=देखा हुआ।

दृष्टभक्तिः=वि॰ त्वम्) देखी है भक्ति जिसकी।

दृष्टि } = चितवन।
दृष्टिपात }

दृष्टोच्छ्रायः=(वि॰ त्वम्) देखी है उचाई जिस की।

दृष्ट्वा=देखकर।

देवदारु=नाम है एक वृक्ष का।

देवपूर्वंगिरिम्=देव है आगे जिस पहाड़ के नाम में अर्थात् देवगिरिम्।

देश=स्थान।

देहली=द्वार।

दैन्य=दीनता, मलीनता।

दैव=भाग्य।

दोष=बुराई।

दोहद=गर्भवती स्त्री के मन की चाह।

द्योतिन्=चमकनेवाला।

द्रक्ष्यसि=देखेगा तू।

द्रुत=तुरन्त, पिघला हुआ।

द्रुततर=बहुत जल्दी।

द्रुम=वृक्ष।

द्वन्द्व=जोड़ा, स्त्री पुरुष का जोड़ा।

द्विरद=दो दांत वाला अर्थात् हाथी

ध

धनपति=धन का स्वामी अर्थात् कुबेर।

धनु:खण्ड = धनुष का एक भाग। धनुष
धनेश = कुबेर।
धन्वन् = धनुष।
धरणि = पृथ्वी।
धातु = खान की वस्तु।
धातृ = विधाता, ब्रह्मा।
धामन् = घर।
धारयत् = धरता हुआ, धारन करता हुआ।
धारा = प्रवाह, बड़ी बूंदों का मेंह।
धारिन् = धरनेवाला।
धार्त्तराष्ट्र = धृतराष्ट्र की सन्तान।
धीर = गंभीर।
धीरता = मौन, उत्तर न देना।
धुन्वत् = हिलाता हुआ।
धूत = हिलाया हुआ।
धूतोद्यानम् = (वि० धाम) हिलाय है बगीचा जिस का
धूप = सुगन्धित धुआं।
धूम = धुआं, भाप।
धृत = पकड़ा हुआ।
धैर्य्य = धीरज, कठोरता।
धौत = श्वेत, उज्ज्वल।
धौतापाङ्गम् = (वि० मयूरम्) श्वेत हैं कोए जिस के।
ध्यास्यन्ति = ध्यान करेंगे, मन में लावेंगे।
ध्वनति = प्रति शब्द करता हुआ।
ध्वनि = शब्द।
ध्वनित = शब्दायमान।

न

नखपद, नखरेख = नुहका चिन्ह।
नग = पहाड़।
नगनदी = नाम है एक नदी का
नगेन्द्र = पहाड़ों में श्रेष्ट अर्थात् कैलास।
नचिरेण = थोड़े ही काल में।
नदति = बोलता है।
ननु = निश्चय।
नन्दीश्वर = महादेव जी का बैल
नभस् = आकाश, सावन मास।
नमित = झुकाया हुआ
नम्र = झुका हुआ
नयनसलिल = आंखों का जल अर्थात् आंसू।
नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् = (वि० निद्राम्) आंसुओं के निकलने से रुका है आना जिस का।
नरपति = राजा
नरपतिपथ = राज मार्ग, सड़क।
नर्त्तयेथा: = नचाइयो तू।
नलिन = कमल।
नलिनी = कमलिनी।
नव = नया।
नवन् = नौ।
नवशशिभृत् = नये चन्द्रमा का धारण करनेवाला अर्थात् महादेवजी।
नाग = हाथी, (सांप)।
नागर = चतुर, नगर का रहनेवाला।
नाभि = टुण्डी।
नामन् = नाम।
नाल = कमल की डंडी।
नि:श्वास = लम्बी श्वांस।
निकष = कसौटी।
निक्षिप्य = रखकर, फेंककर।
निखिल = समस्त।
निचुल = वृक्षविशेष।

नितम्ब=चूतड़ ।
नित्य=सदा ।
निद्रा=नींद ।
निधि=धन, खज़ाना ।
निनाद=शोर, शब्द ।
निपतति=गिरता है ।
निपातयत्=गिराता हुआ ।
निपुण=चतुर, दक्ष ।
निभ=समान ।
निभृत=एकान्त, अकेला ।
निम्न=गहरा ।
नियत=स्थापित, ठैराया हुआ ।
नियतवसतिम्=(वि०स्कन्दम्) ठैराया है वसना जिसने ।
नियमन=दबाना, मरजाद में रखना ।
निरञ्जन=[निर्अंजन] अञ्जन रहित, [निरञ्जन] दुःख सुख रहित ।
निर्घन=बादल रहित ।
निर्दय=क्रूर, जिसको दया न हो ।
निर्दिशत्=दिखाता हुआ ।
निर्मित=बनाया, रचा हुआ ।
निर्विनोद=नहीं आनन्द है जिसको अर्थात् दुःखी ।
निर्विन्ध्या=नाम है एक नदी का ।
निर्विशेः=प्रवेश करियो तू, भोगियो तू ।
निवृत्त=लौटा हुआ ।
निश्=रात ।
निशीथ=आधी रात ।
निश्शब्द=चुपचाप ।
निश्श्वास=लम्बी स्वास ।
निषण्ण=बैठाहुआ ।
निष्पतन्ति=निकलते हैं ।
निष्फल=वृथा ।
निष्फलारम्भयत्नाः=[वि० के] बिना फलवाले हैं आरम्भ जिनके यत्नों के ।
निस्स्यन्द=टपकना
निस्स्यन्दमान=टपकता हुआ ।
निहित=रक्खाहुआ ।
निह्राद=शब्द ।
निह्रादिन्=शब्दायमान ।
नीचैराख्यस्=(वि० गिरिम्) नीच है नाम जिसका ।
नीचैस्=नीचे की ओर, नीचा, ओछा, छोटा नीच, तुच्छ ।
नीड=घोंसला ।
नीत=लायाहुआ, बिताया हुआ ।
नीत्वा=बिताकर ।
नीप=कदम्ब ।
नील=नीला ।
नीलकण्ठ=मोर, महादेव ।
नीवी } =नाडा, इजारबन्द ।
नीवीबन्ध }
नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलम्=(वि०वासः) नाड़ा खुलजाने से ढीला होगया है जो ।
नुदति=बहता है, चलता है ।
नूतन=नया ।
नूनम्=निश्चय ।
नृ=मनुष्य ।
नृत्य=नाच ।
नेतृ=मार्ग दिखाने वाला ।
नेत्र=आंख ।
नेमि=पहिये की पुट्ठी ।

नेय=लेजाने योग्य।
नेष्यन्ति=लेजायंगे, बनावेंगे।
नैदाघ-जेठ असाढ़ में होनेवाला। (कड़ी धूप)
नैश=रात का।
नौ-हम दोनों।
न्यस्त-रक्खाहुआ।
न्यास-चिन्ह, खोज।

प

पक्क=पका हुआ।।
पक्षिन्-पखेरू।
पक्ष्मन्=पलक।
पङ्क-कीचड़, मिट्टी।
पंक्ति=लकीर।
पञ्चवाण-कामदेव।
पञ्जार=पिंजरा।
पट-कपड़ा, पर्दा।
पटह=नगाड़ा ढोल।
पटहता-ढोलकाशब्द।
पटु-चतुर।
पटुकरणैः=[वि० प्राणिभिः] कुशल हैं इन्द्री जिन के
पण्यस्त्री=मोल की स्त्री अर्थात् वेश्या।
पतन्ति=गिरते हैं।
पति=स्वामी।
पतित=गिरा हुआ, पापी।
पतिवती=सुहागिन, जीता है पति जिसका।
पथ=मार्ग।
पथिक=बटोही।
पथिन्-मार्ग।

पद=पांव, चिन्ह, श्लोक का चरण, अधिकार, स्थान।
पदवी=मार्ग, अधिकार।
पद्म=कमल, नाम एक निधि का कुबेर की ९ निधियों में से।
पद्मिनी-कमलिनी।
पयस्-पानी।
पयोद-बादल।
पयोनिधि-समुद्र।
पर, परस्-पीछे।
पराधीन=परएवस।
पराधीनवृत्तिः=[वि० अन्यः अथवा अहम्] परएवस है आजीविका जिसकी।
परि=आस पास।
परिकीर्त्तित=कहागया है, कहलाता है।
परिगणना=गिन्ती।
परिगत=घेरा हुआ।
परिचय=जान पहिचान।
परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्-[वि० कौतूहला नाम्] जानी हैं भ्रकुटियों की मरोड़ जिन्हों ने।
परिणत-झुकाहुआ, पक्का, पूरा।
परिणति-पक्कापन।
परिणमयितृ=झुकने वाला, पकानेवाला।
परितः=चारों ओर।
परिताप=तपन, गरमी।
परित्राण=रक्षा, बचाना।
परिदग्ध=जला हुआ।
परिभव-तिरस्कार।
परिमल=सुगन्धि।

113 से 120 तक पेज पेज नहीं हैं फटे हुए हैं।

रय=नदी का वेग।

रवि=सूर्य।

रस=पानी, स्वाद, हृदय का भाव।

रसना=तागड़ी, (जीभ)।

राग=रंग।

राजधानी=राजा के रहने का नगर।

राजन्=राजा, यक्ष।

राजन्यानाम्=राजाओं का।

राजराज=कुवेर।

राजहंस=एक प्रकार का स्वेत हंस है जिसकी चोंच और पांव लाल होते हैं।

राशि=ढेर।

रिक्त=रीता।

रुच, रुचि =चमक, कान्ति, छवि।

रुज्=रोग, पीड़ा, थकावट।

रुणद्धि=रोकता है।

रुदत्=रोता हुआ।

रुद्ध=रुका हुआ।

रुद्धापाङ्गप्रसरम्=(वि॰नयनम्) रुका है कटाक्षों का चलना जिसका।

रुद्धालोके=(वि॰ नरपतिपथे) रुका है देखना जिसमें।

रुह=उपजनेवाला, बढ़नेवाला।

रूढ़=उपजा हुआ, बढ़ा हुआ।

रूपिन्=रूपवाला।

रेवती=बलदेवजी की स्त्री का नाम है।

रेवतीलोचनाङ्काम्=(वि॰ हालाम्) रेवती के नेत्र का प्रतिबिम्ब है जिस में अर्थात् निर्मल।

रेवा=नामहै एक नदीका (नर्मदा)।

रोधस्=नदी का तीर, किनारा।

ल

लक्षण=नाम, चिन्ह, जिस्से कोई वस्तु पहचानीजाय।

लक्षयेथा=पहचानियो तू।

लक्ष्य=वेझा, दीखता हुआ, निशाना।

लग्न=लगा हुआ।

लघु=हलका, छोटा, तुच्छ।

लघुगतिः=(वि॰ त्वम्) जल्दी चलने वाला।

लङ्घयिष्यन्ति=उलांघेंगे।

लता=वेलि।

लप्स्यते=पावेगा।

लब्ध=प्राप्त, पाया हुआ।

लब्धकामा=(वि॰ याञ्चा) सफल।

लब्धनिद्रासुखा=(वि॰ सा) पाया है निद्रा का सुख जिसने।

लब्धा=पावेगा।

लम्ब, लम्बमान =लटकता हुआ, झुकाहुआ।

ललना=स्त्री।

ललित=सुन्दर।

ललितवनिताः=(वि॰प्रासादाः) सुन्दर स्त्रीहैं जिनमें

ललितवनितापादरागाङ्कितेषु= (वि॰ हर्म्येषु) सुन्दर स्त्रियों के महावर लगे पावों के चिन्ह हैं जिनमें।

लव=बूंद।

लाङ्गल=हल।

लाङ्गलिन्=हल रखनेवाला अर्थात् बलदेवजी।

लाव=काटना, चुन्ना, बीन्ना।

लावी=काटने वाला, बीन्नेवाला।

लिखत्=लिखाहुआ।

लिखितवपुषौ–(वि० शंखपद्मौ) लिखी हैं सूरत जिनकी।
लीला–खेल, अठखेली।
लेखा=लकीर।
लेश=बूंद, (थोड़ा)।
लोचन–आंख।
लोभ=लालच।
लोध्र=फूलविशेष।
लोल=चलायमान, अभिलाषी, मग्न।
लोलापाङ्गैः=(वि० लोचनैः) चलायमान हैं कटाच जिनके।

व

वंश=बांस, कुल।
वः–तुम्हारा।
वक्तुम्=कहने को।
वक्त्र=मुख।
वक्र=टेढ़ा।
वक्षसि, **वक्ष्यति** =धारन करेगा, सिरपर लेगा तू।
वचन=बात, बोल।
वचस्=शब्द, बात।
वञ्चित=ठगा हुआ।
वडभिः=अट्टा, अटारी।
वत्सा=बच्ची, बछिया।
वदन–मुख।
वधू=बहू, नई स्त्री।
वन=जंगल।
वनगज–जंगली हाथी।
वनचर=वन में फिरनेवाला, बनवासी, जंगली मनुष्य।
वनचरवधूभुक्तकुञ्जे–(वि० तस्मिन्) वनवासियों की स्त्रियों ने भोगी हैं कुञ्ज जिसकी।
वनद्विप=वन का हाथी।
वनान्त–वन की सीमा।
वनिता=स्त्री।
वन्द्य=वन्दना के योग्य।
वपु, **वपुष्** =शरीर।
वप्र–किलेकी भीत।
वप्रक्रीड़ापरिणतगजप्रेक्षणीयम्[वि० मेघम्] भीत गिराने के खेल में झुके हुए हाथी की भांति देखने योग्य।
वयम्=हम।
वरम्=अच्छा।
वराह=सूअर।
वर्ग–जात, समूह।
वर्ण=रंग।
वर्तिन्–होता हुआ।
वर्त्मन्=मार्ग।
वर्द्धित=पाला हुआ, बढ़ाया हुआ।
वर्ष=बरस, मेह।
वर्षभोग्येन=[वि० शापेन] बरसदिन के भोगनेयोग्य।
वर्ह, **वर्हभार** =मोर की पूंछ।
वर्हिन्=मोर।
वलय–कंगन, घेरा।
वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम्=[वि० त्वाम् कंगन के हीरों की रगड़ से पानी छोड़नेवाला।
वलाका=बगुली।
वलाकाः=बगुलियां।
वलाहक=बादल।

वल्मीक=दीमक की बांबी।
वश=आधीनता।
वशिष्ठ=नाम है एक ऋषि का।
वसत्=रहता हुआ, बसता हुआ।
वसति=घर, रहने का स्थान।
वसन-कपड़ा।
वसुधा-पृथ्वी।
वस्तु=पदार्थ, चिह्न।
वहति=लिये जाता है।
वाचाल=बहुत बोलनेवाला, गाल बजाने वाला।
वात=ब्यार, पवन।
वातायन=खिड़की, बारी, झरोखा।
वातायनस्थ-खिड़की में बैठा हुआ।
वानीर=नरसल, एक प्रकार का बेत।
वान्त=उगला हुआ, वमन किया हुआ।
वान्तवृष्टि:=मेह उगलने वाला।
वापी=छोटा ताल (बावड़ी)।
वाम=बायां, सुन्दर।
वायु=ब्यार, पवन।
वारि=पानी।
वारिज=कमल।
वारिजवन-कमल का ताल।
वार्त्ता-बात, संदेशा।
वाष्प=भाप, आंसू।
वास:-कपड़ा।
वास=बसने का स्थान, गन्ध, कपड़ा।
वासयष्टि=पक्षी बठने का खम्भ अर्थात् छत्री।
वासर=दिन।
वासव=इन्द्र।
वासवी=इन्द्र का।
वासित-सुगन्धित।
वास्यति=चलता है (जैसे पवन)।
वाह्य=बाहर, लेचलने योग्य।
वाह्येत्-लेजायगा।
विकच-खिला हुआ [जैसे फूल]।
विकार=बदलना।
विक्लव-घबड़ाया हुआ, विकल।
विक्षिपत्=फेंका हुआ।
विक्षिप्त=बावला।
विख्यात्-प्रसिद्ध।
विगणय=गिनले तू, सोचले तू।
विगम-बियोग, दूर होना।
विगलित-दूर हुआ, मिटा हुआ, गिरा हुआ।
तिगलितशुचा=[वि० मया] मिटगया है शोक जिसका।
विचर=जा, चल फिर।
विजय-जीत।
विटप-वृक्ष की शाखा।
वितत्य-फैलाकर।
विदधति=करते हैं।
विदित-प्रगट
विदिशा=नाम है एक नगर का [भिलसा]।
विदुर-बियोगी, दुःखी।
विद्ध=फेंकाहुआ, छिदा हुआ।
विद्धि=जानले तू।
विद्युत्-बिजली।
विद्युत्वत्=बिजली है जिस में।
विद्युद्दामन्-कौंधा, चमक, बिजली की लकीर।

विद्युद्दामस्फुरणचकितैः - (वि० लोचनैः) बिजली के कौंधे की चमक से चकराए हुए।

विधि - विधाता, भाग्य, दैव, रीति भांति ।

विधुर - दुखी, चिन्ता, चिन्तावान ।

विनयन=दूर करना ।

विनिष्क्रय=नाश किया है कर्म्मों का जिसने ।

विनोद=मनबहलाव

विन्दु - बूंद

विन्ध्य - विन्ध्याचल पहाड़ ।

विन्यस्यत्=रखता हुआ, संभालता हुआ ।

विन्यस्यन्ती=रखती हुई ।

विप्रबुद्ध - जगा हुआ ।

विप्रयुक्त - अलग किया हुआ वियोगी विरही ।

बिप्रयोग - वियोग, जुदाई, विरह ।

विफल=व्यर्थ, वृथा ।

विफलप्रेरणा=(वि० चूर्णमुष्टिः) वृथा फेंका हुआ ।

विस्रंशिन्=गिरा हुआ ।

विभ्रम=बिलास, कटाच ।

विमल=निर्मल, स्वच्छ, सुन्दर ।

विमलोत्पलप्रभाः= (वि० दृशः) निर्मल कमलकीसी है कान्ति जिन की ।

विमान=महल, मन्दिर ।

विमुख - मुख फेरा हुआ ।

विम्ब=गोला (जैसे चन्द्रमा सूरज का विम्ब) प्रतिविम्ब, बिम्बाफल ।

वियुक्त=अलग ।

वियोग - जुदाई, विरह ।

विरचित=रचा हुआ, बनाया हुआ ।

विरचितपदम् - (वि० गेयम्) रचे हैं पद जिसमें ।

विरचितवपुः - (वि० त्वं) बनाया है शरीर जिसने ।

विरत - आसक्त, लगाहुआ ।

विरह=जुदाई, वियोग ।

विरहज=जुदाई से उपजने वाला ।

विरहव्यापदः - (वि० स्त्रीणाम्) विरह में कुम्हलानेवाले

विलसत्=शोभायमान, कलोल करता हुआ ।

विलसत्कृष्णसारप्रभाणाम् - (वि० कौतूहलानाम्) कलोल करते हुए हरिण कीसी है कान्ति जिन में ।

विलसन=बिलास ।

विलसित=क्रीड़ा करता हुआ ।

विल्व - बेल का फल ।

विवर्ण=फीका रंग, मिटाहुआ ।

विवृत =उघारा हुआ ।

विशति =प्रवेश करता है ।

विशद= श्वेत, उजला, स्वच्छ ।

विशाल= चौड़ा ।

विशीर्ण =सूखा, मुरझाया हुआ, कई धारों में बटी हुई धारा ।

विशेष =मुख्य ।

विश्रान्त= ठैरा हुआ ।

बिश्राम= ठैरना ।

विश्लेषित =जुदा, अलग ।

विषम =ऊंचा नीचा, खरदरा कठोर ।

विषय =पदार्थ, प्रकरण ।

विष्णु= हरि ।

विस =कमल की डंडी ।

विस्तार= फैलाव ।

विस्मरत् =भूलता हुआ ।

विस्मृतभ्रूविलासम्= (वि० नयनम्) भूली है भवों की क्रीड़ा जिसने ।

विहग= पची ।

विहरेत् - विहार करने को फिरयो तू
विहस्य = हंसी करके
विहातुम् = छोड़ने को।
विह्वल = गदगद, प्रेम में मग्न।
वीक्षमाण = देखता हुआ।
वीक्ष्यमाण = दीखता हुआ।
वीचि = तरङ्ग, लहर।
वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणाया: = (वि० निर्विन्ध्याया:) तरङ्ग उठने से बोलते हुए पक्षियों की पंक्ति रूपी तागड़ी है जिसकी।
वीणा = बाजा विशेष।
वीणिन् = वीणा बजानेवाला।
वृक्ष = रूख, पेड़।
वृति = बाड़, घेरा।
वृत्ति = आजीविका, बरताव।
वृद्ध = बड़ा, पुराना, बूढ़ा।
वृद्धि = बढ़ती।
वृन्द = समूह, झुण्ड।
वृष, वृषभ = बैल, बिजार
वृष्टि = मेह, बरषा।
वृहत् = बड़ा।
वेग = जल्दी चलना, तेज।
वेणि, वेणी = बालों का जूड़ा, चोटी।
वेणीभूतप्रतनुसलिला = (वि० सिन्धु:) वेनी के आकार है थोड़ा पानी जिसका।
वेत्रवती = नाम है एक नदी का।
वेदि = यज्ञस्थान।
वेश्मन् = घर।
वेश्या = मोल की स्त्री, वराङ्गना।
वेष - भेस, पहनावा।
वेष्टन = घेरा।
वै = निश्चय।
वैदूर्य्य - मणि विशेष।
वैरिन् - वैरी, प्रतिकूल।
व्यक्त = प्रगट।
व्यक्ति - प्रगटता।
व्यञ्जयत् = दिखलाता हुआ।
व्यतिकर = मिला हुआ, मेल जोल।
व्यथा = दु:ख।
व्यपगत = मिटा हुआ।
व्यपगतशुच: - (वि० हंसा:) मिटगई है पीड़ा जिनकी
व्यवसित = स्वीकार किया हुआ, मन में ठानाहुआ।
व्यवस्येत् = उद्योग करेगा तू।
व्यस्त = हटायाहुआ, दूर किया हुआ।
व्याकुल - घबड़ाया हुआ।
व्याजहार = बोला, कहने लगा।
व्रापद् = आपदा, मृत्यु।
व्रापार = काम।
व्रालम्बेथा: - होले होले पार उतरियो तू।
व्रालुम्पन्ति = दूर करते हैं।
व्रोमन् = आकाश।
व्रज = जा तू।

श

शक्ष्यति - समर्थ होगा वह।
शङ्का = डर, भय, सन्देह।
शङ्के = डरता हूं मैं।
शङ्ख - संख, कुबेर की ९ निधियों में से एक निधि।

शत=सौ।
शब्द=बोल, आहट।
शब्दायन्ते=बोलते हैं, शब्द करते हैं।
शब्दित=कहा हुआ।
शनकैस=होले से।
शमयितुम्=मिटाने को।
शम्भु=महादेव।
शयन=खाट, सोना।
शय्या=खाट।
शर=सरकण्डा, नरसल, (बाण)।
शरण=सहारा।
शरद्=क्वार कातक की ऋतु।
शरभ=कहानियों में एक प्रकार का पशु है जिस के ८ पैर होते हैं यह पशु पहाड़ों में रहता है।
शरवनभवम्=(वि० देवम्) सरकण्डे का वन है जन्म-स्थान जिसका अर्थात् स्वामिकार्त्तिक।
शशिन्=चन्द्रमा।
शश्वत्=सदांसदां, निरन्तर।
शष्प=नई घास।
शस्त्रपाणि=हथ्यार बन्द।
शाखा=वृक्ष की डाली।
शान्त=दबाहुआ।
शान्ति=दबाव।
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्=दबी है चिन्ता जिसकी और प्रसन्न हैं नेत्र जिस के।
शाप=सौगन्द, शपथ।
शारङ्ग=मोर, चातक।
शारिका=मैना (सारिका)
शार्ङ्ग=सींग का बना हुआ (विष्णु का धनुष)।
शार्ङ्गपाणि, शार्ङ्गिन्=विष्णु।
शाल्मलि=सेमल का वृक्ष।
शिखर=पहाड़ की चोटी, एक प्रकार की मणि जिस का रंग अनार के दाने के समान होता है।
शिखरिन्=पहाड़।
शिखा=चोटी, जूड़ा।
शिखिन्=मोर।
शिञ्जत्=झनकारता हुआ।
शित=पैना, तीक्ष्ण।
शिथिल=ढीला।
शिरीष=सिरस का वृक्ष।
शिला=पत्थर की चटान।
शिलाविश्मन्=पहाड़ की गुफा।
शिशिर=जाड़े की ऋतु, जाड़ा, ठण्ड।
शिशु=बच्चा।
शीत=पाला तुसार जाड़ा।
शीतल=ठंडा।
शीर्ण=सूखा।
शुक्ल=श्वेत।
शुक्लापाङ्ग=श्वेत कोयोंवाला अर्थात् मोर।
शुच्=सोच, चिन्ता, शोक, दुःख।
शुद्ध=पवित्र, निर्दोष।
शुद्धस्नान=विना तेल और विना सुगन्ध के स्नान।
शुद्धि=पवित्रता।
शुभ्र=श्वेत।
शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्=(वि० शोभाम्) महादेव के श्वेत् नन्दीगण की खोदी हुई कीच के साथ है उपमा जिसकी।
शुष्क=सूखा।

शून्य=रीता।
शूलिन्=महादेव।
शृङ्ग=सींग, पहाड़ की शिखर।
शृणु=सुनले तू।
शेष=बचा हुआ, अधिक, सांपों का राजा।
शेषविस्तारपाण्डुः -(वि० स्तनः) अधिक शरीर है पीला जिसका।
शैल=पहाड़।
शैलराज=हिमालय पहाड़।
शोभा - छवि।
शोभिन् - छबीला, सुन्दर।
श्च्योतः=छिड़कना, झरना, चूना, टपकना।
श्याम=काला।
श्यामा=सोलह बरस की स्त्री, एक प्रकार की लता जिसको प्रियङ्गु भी कहते हैं।
श्रद्धानः - श्रद्धामान, निश्चय करनेवाला।
श्रम=थकावट।
श्रवण - कान।
श्राम्यत्=थकता हुआ।
श्रित - ढकाहुआ, छाया हुआ।
श्री=शोभा, लक्ष्मी।
श्रुत्वा=सुनकर।
श्रेणि=नसैनी, पंक्ति।
श्रोणी - नितम्ब।
श्रोतस् } =कान।
श्रोत्र }
श्रोष्यति=सुनेगा।
श्लाघनीय - बड़ाई के योग्य।
श्लाघमान - प्रसन्न, अपनी बड़ाई आप करताहुआ।

ष

षट्पद=भौंरा।
षट्पदज्य - भौंरों की प्रतिञ्चा है जिस में अर्थात् काम देव का धनुष।

स

स } - सहित।
सह }
संयोग - मिलाप।
संयोज्य - मिलाकर।
संवाहन - मलना, हाथ फेरना।
संविधाय=करके।
संरक्त - रंगा हुआ, अनुरागवान, तत्पर, किसी काम में लगा हुआ।
संरोध=रुकावट, रोक।
संशुष्क - बहुत सूखा।
संश्रय - आसरा।
संसक्त=लगा हुआ।
संसर्पत् = चलताहुआ, बहता हुआ।
संसर्पन्त्या = बहती हुई, चलती हुई [नदी]।
संस्कार = मांजना, शुद्ध करना, शोभित करना। सुगन्धित करना।
संस्थ = ठैरना।
संस्थित = ठैरा हुआ।
संहार = समूह, इकट्ठापन (नाश)।
सः = वह
सखा } = मित्र।
सखि }
सखी = प्यारी स्त्री।
सगर = नाम है एक राजा का।
सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्=(वि० जन्हु कन्याम्) सगर की सन्तान की है स्वर्ग की नसैनी जो।
सगर्व्व = हर्षित, प्रसन्न।
सङ्कल्प = मनका विकार, कल्पना।
सङ्कल्पन्ते = योग्य होते हैं।
सङ्क्षिप्येत = छोटा होना, सुकड़ना।

सङ्गम= मिलाप दो नदियों का ।
सङ्गीत= गाना, नाच ।
सङ्गीतार्थ=गाने बजाने का समाज ।
सङ्घट्ट=घिसना, रगड़ना।
सचित्र - चित्र हैं जिस में ।
सजल - जल है जिसमें ।
सजलकणिका:=(वि० जलमुच:) जल की बूंद हैं जिन में ।
सजलनयनै: - (वि० शुक्लापाङ्गै:) जल है आंखों में जिनकी ।
सजलपृषतै:= वि० वातै:) जलकी फुहार हैं जिनमे ।
सत्=होता हुआ, अच्छा, सज्जन ।
सतत - सदा, निरन्तर ।
सततगति=सदा चलनेवाला अर्थात् पवन ।
सत्वरम् - तुरन्त ।
सदयहृदय=दया है हृदय में जिन के ।
सदृश=समान, तुल्य ।
सद्भाव=शुद्ध स्वभाव ।
सद्य:कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य=(वि० अद्रे: तुरन्तके कटेहुए हाथी दांत के टुकड़ेके समान स्वेतह जो
सद्य:पातिन्=तुरन्त कुम्हलाने वाला तुरन्त गिरने वाला ।
सद्यस्=सद, तुरन्त ।
सद्यस्सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रम्=(वि० मालम्) तुरन्त हल से जुते हुए हैं सुगन्धित खेत जिसके ।
सनाथ - सहित ।
सन्तप्त=तपाया हुआ, दुखी ।
सन्दर्शन=देखना, दर्शन ।
न्देश=खबर, वार्त्ता ।
न्धि=जोड़ ।
ा=दिन और रात के मिलने का समय अर्थात्
ौर सांझ ।

सन्न=निकट ।
सन्नद्ध - निकट रक्खा हुआ, (हथ्यार बांधे हुए) ।
सन्निकीर्ण=फेंका हुआ, फैलाया हुआ, पड़ा हुआ ।
सन्निकीर्णैकपार्श्वाम्=(वि० साध्वीम्) एक करौंट पड़ी हुई ।
सन्निकृष्ट - निकट लाया हुआ ।
सन्निपत्य=उतरकर ।
सन्निपात - इकट्ठा होना, कई वस्तुओंका समूह ।
सन्निवृत्त - लौट कर आया हुआ, हटा हुआ ।
सन्न्यस्त=त्यागा, हुआ ।
सन्न्यस्ताभरणम्=(वि० गात्रम्) उतार रक्खे हैं गहने जिसके ।
सपदि=तुरन्त ।
सफर=एक प्रकार की मछी ।
सभृङ्गयूथै: - (वि० वारिभि:) भौंरों के झुण्डहैं जिनके
सभ्रूभङ्ग - टेढ़ी भौंहों सहित अर्थात् रिसभरी भौंहों में
सभ्रूभंगप्रहितनयनै: - (वि० विभ्रमै:) टेढ़ी भौंहों सहितफेंकी हुई दृष्टिवाले ।
सम=साथ, तुल्य।
समग्र=संपूर्ण, सब, पूरा, समस्त ।
समता=बराबरी ।
समधिकतर=बहुत से बहुत ।
समन्तात्=चारों ओर ।
समम्=साथ ही साथ ।
समय=काल।
समर=लड़ाई, युद्ध ।
समरविमुख=युद्ध से मुंह फेरा हुआ ।
समर्थ=सामर्थ वाला, बूते वाला ।
समीपम्=निकट ।
समीर=पवन ।
समुचित=योग्य ।
सम्पत्स्यन्ते=साथ चलेंगे ।
सम्पद् - धन, ऐश्वर्य ।

सम्पर्क=छूना, लगाव, मिलाप।
सम्पूर्ण=पूरा, समस्त।
सम्भाव्य=आदर करके।
सम्भाष्य=वार्त्तालाप करके।
सम्भृत=पालाहुआ, भरा हुआ।
सम्भृतश्रीः=शोभा से भरा हुआ।
सम्भृतस्नेहम्=(वि० मनः) प्रेम से भरा हुआ।
सम्भोग=भोग, किसी वस्तु का सुख उठाना।
सम्भ्रम=अचम्भा, चकित, जल्दी।
सम्मिश्र=मिला हुआ।
सरत्=चलता हुआ।
सरल=वृक्ष विशेष (साल), सीधा।
सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा=[वि० दवाग्निः] सरल के कन्धों की रगड़से उत्पत्ति है जिस की।
सरस=गीला, डहडहा।
सरसनिचुलात्=(वि० स्थानात्) डहडहे निचुल के फूल हैं जहां।
सरित्=नदी।
सर्पिस्=घी।
सर्व्व=सब।
सर्व्वग / **सर्व्वगत** =सब ठौर जाने वाला।
सर्व्वतस्=सब ओर।
सर्व्वत्र=सब ठौर।
सर्व्वविद्=सब जाननेवाला।
सलिल=पानी।
सलिलोद्गारम्=[वि० अभ्रवृन्दम्]पानी उगलनेवाला
सवर्ण=सदृश, समान।
सवित्री=पृथ्वी।
सव्यापार=काम में लगा हुआ।

सह=साथ।
सहचर=साथ चलने वाला, जोड़े में से एक।
सहते=सहना, ठेरना।
सहभार्य्या=स्त्री सहित।
सहस्र=हजार।
सहाय=साथ।
सा=वह स्त्री।
साक्षात्=प्रत्यक्ष।
साक्षिन्=गवाह, साखी।
सादरम्=आदर सहित।
सादृश्य=चित्र, तसवीर।
साधु=चतुर, विज्ञ, सज्जन।
साध्वी=पतिव्रता।
सानु=पहाड़ की चोटी, शिखर।
सानुमत्=शिखर वाला अर्थात् पहाड़।
सान्तर्हासम्=भीतर हंसता हुआ, मन ही मन हंसता हुआ।
सान्ध्य=सांझ को।
साभ्र=बादल सहित।
सामान्य=साधारन अर्थात् विशेष नहीं।
सार=पानी, किसी वस्तु का तत्व।
सारयत्=चलाताहुआ जैसे बीनाके तारोंको चलाना अर्थात् बजाना।
सारस=पक्षी विशेष, हंस।
सारस्वत=सरस्वती का।
सारिका=मैना (शारिका)।
सार्द्धम्=सहित।
सास्र=आंसू सहित।
सिक्त=भीगा।
सिञ्चित=सींचता हुआ।
सित=श्वेत।

सितमणि – श्वेत मणि अर्थात् स्फटिक वा बिल्लौर ।
सिद्ध=साधा हुआ, किया हुआ, एक प्रकार के देवता
सिद्धार्थक=श्वेत सरसों ।
सिन्दूर:=लाल सीसा ।
सिन्धु=नाम है एक नदी का, समुद्र ।
सिप्रा=नाम है एक नदी का ।
सिषेवे=सेवन किया ।
सीमन्त – बालों की मांग ।
सीमन्तिनी – मांगवाली अर्थात् स्त्री ।
सीर – हल ।
सु=अच्छा ।
सुकृत – अच्छा काम, अनुग्रह ।
सुख=आनन्द ।
सुखयितुम्=आनन्द देने को ।
सुखस्पर्श – छूने में सुख है जिसके ।
सुखिन् – सुखी ।
सुचरित=अच्छा काम ।
सुतनु – पतला, दुबला ।
सुतराम – अत्यन्त ।
सुप्त=सोयाहुआ ।
सुप्तपारावतायाम् – (वि० बडभौ) सोते हैं कबूतर जिस में ।
सुभग=सुन्दर, मनोहर, आंख वा कानको प्यारा ।
सुभगम्मन्य=वह मनुष्य जो अपने को स्त्री का प्यारा मानता है ।
सुभगम्मन्यभाव=सुभगमन्यता अपने को अच्छा जान्ना ।
सुर=देवता ।
सुरकरी – ऐरावत, इन्द्र का हाथी ।
सुरत=स्त्री पुरुष का संभोग ।
सुरपति – देवताओं का स्वामी अर्थात् इन्द्र ।
सुरपतिधनुश्चारुणा=(वि० तोरणेन) इन्द्रके धनुष समान सुन्दर ।
सुरभि – सुगन्धि, कामधेनु, गाय ।
सुरभित=सुगन्धित ।
सुरभितशिलम्=(वि० अचलम्) सुगन्धित हैं पत्थर जिस के ।
सुरयुवति=देव स्त्री ।
सुलभ=सुगम ।
सुहृद्=प्यारा मित्र ।
सूचयिष्यन्ति=दिखलावेंगे ।
सूचि=सुई, कांटा ।
सूचिभिन्न=खिली हैं सुई जिसकी ।
सूचिभेद्य – सुई से छेदने योग्य, बहुत गाढ़ा ।
सूत्र=सूत ।
सूर्य=सूरज ।
सृष्टि – रचना ॥
सेन्द्रचापम् – (वि० लाम्) इन्द्र धनुष सहित ।
सेविष्यन्ते – सेवा में रहेंगे, सेवन करेंगे ।
सैन्य – सेना फौज ।
सोत्कम्प – कंप सहित, कांपता हुआ ।
सोपान – सीढ़ी ।
सोपानत्व – सीढ़ीपन ।
सौदामिनी=बिजली ।
सौध=महल, मकान की कोई अलंग ।
सौभाग्य=सुभगता, कृपा, सुहाग ।
सौम्य=अच्छे सुभाववाला, साधू ।
सौहार्द – मित्रता ।
स्कन्द=स्वामि कार्त्तिक ।
स्कन्ध – कन्धा ।
स्खलित=गिरना ।
स्खलितसुभगं=गिरने में शोभायमान ।

स्तन - कुच, उरोज।

स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः=[वि० हारैः] कुचों की उन्नति से टूटे हैं डोरे जिनके।

स्तनित=गरजता हुआ, बहुत शोरकरता हुआ।

स्तम्भ=खम्भ।

स्तम्भित - रोका हुआ।

स्तम्भितान्तर्जलौघः - (वि० त्वम्) रुका है जल का निकलना जिस में।

स्तवक - गुच्छा।

स्तिमित=भीगा, निश्चल दृष्टि, प्रसन्न।

स्तिमितनयनाम्=(वि० ताम्) प्रसन्न हैं नेत्रजिसके

स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम्=(वि० शोभाम्) निश्चल नेत्रों से देखने योग्य।

स्तुति=बड़ाई।

स्तोक - थोड़ा सा।

स्थल - जगह, स्थान

स्थली=कड़ी भूमि।

स्थलकमलिनी=भूमि कमलिनी।

स्थलीदेवता=वन के देवता।

स्थातव्य=ठैरने योग्य।

स्थान=जगह।

स्थापित - ठैराया हुआ।

स्थायिन् - ठैरनेवाला।

स्थित - ठैरा हुआ।

स्थित्वा - ठैरकर।

स्थिर=ठैरा हुआ।

स्थूल=मोटा।

स्थूलमध्येन्द्रनीलम्=(वि० मुक्ता गुणम्) मध्य में है बड़ा नीलम जिसके।

स्नपयतु=स्नान कराइयो तू।

स्नान=न्हाना शरीर धोना।

स्निग्ध=चिकना, घना, प्यारा।

स्निग्धगम्भीरघोषम्=(वि० त्वाम्) प्यारी है गम्भीर गरज जिस की।

स्निग्धच्छायातरुषु=(वि० आश्रमेषु) घनी छाया के वृक्ष हैं जिन में।

स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे= [वि० त्वयि] चिकने पिसे हुए अञ्जन की है शोभा जिस में।

स्निग्धवेणीसवर्णे=(वि० त्वयि) चिकनी वेणी का सा है रंग जिसमें।

स्नेह=चिकनाई, प्यार।

स्पन्दिन् - हिलता हुआ, चलायमान, फड़कता हुआ।

स्पर्श=छूना।

स्पृष्ट=छुआ हुआ, प्रेरना किया हुआ।

स्फटिक=बिल्लौर।

स्फटिकफलका - बिल्लौर की चौकी।

स्फुट=फूटना, खिलना।

स्फुटित - खिला हुआ।

स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः - (वि० वातः) खिलते हुए कमलों की गन्ध के मिलाप से सुगन्धित है जो।

स्फुरण=हिलना, फड़कना, चमकना।

स्फुरति - फड़कता है।

स्फुरित=फड़कता हुआ।

स्फुरितरुचिना=(वि० वर्हेण) चमकताहुआ।

स्मरसि=सुधि करता है तू।

स्यन्दिन् - झरता हुआ, चूता हुआ, टपकता हुआ।

स्याः
स्यात्
स्युः } =होना।

स्रस्त=गिरा हुआ, पड़ा हुआ।

स्रस्तगङ्गादुकूलाम्=(वि० अलकाम्) गिरा है गङ्गा-रूपी वस्त्र जिसका।
स्रुति=चूना, टपकना, बहना, (जैसे वृक्ष का नया पत्ता टूटने से दूध बहता है।
स्रोतस्=सोता, नदी, धारा।
स्व=अपना।
स्वच्छ=निर्मल।
स्वन=शब्द।
स्वनत्-शब्द करताहुआ।
स्वप्न=नींद सोते में किसी वस्तु का देखना।
स्वयम्=आपही आप।
स्वर्ग-इन्द्र का स्थान।
स्वर्गिन्=देवता, स्वर्ग में वास मिला है जिनको।
स्वल्प=थोड़ा।
स्वागत-आदर, सत्कार।
स्वागतीकृत्य=आदर किया है जिसका।
स्वादु=सुख
स्वाधिकारप्रमत्तः=(वि० यक्षः) अपने काममें असावधान।
स्वेद=पसीना।

ह

हंस-पक्षी विशेष।
हति=चोट।
हन्त-हाय, खेद का विषय।
हन्तुम्-मारनेको।
हर=लेजाना (शिवजी)।
हरि=विष्णु।
हरिचन्दन-स्वर्ग के वृक्षों में से एक वृक्षका नाम है।
हरिणी=मृगनी।
हरित=हरा रंग।
हर्त्तुम्=लेने को, हरने को।
हर्म्य=महल, भवन।
हल=खेत जोतने का औजार।
हलधर, हली, हलभृत्=हल का धारण करने वाला अर्थात् बलदेवजी।
हस्त=हाथ, सूंड।
हार=माला।
हारयिष्यत्=भिजवाता हुआ।
हारयिष्यन्=भिजवाने को।
हाला=मदिरा।
हास-हंस।
हि=निश्चय।
हित्वा=छोड़कर।
हिमकर, हिमांशु=शीतल किरनोंवाला अर्थात् चन्द्रमा।
हुत-आहुति।
हुतवह=आहुती लेनेवाला अर्थात् अग्नि।
हुताग्नि-यज्ञ की आग।
हृत्=हरने वाला, लाने वाला।
हृत=लाया हुआ, दूर किया हुआ।
हृत्वा=लेकर, पकड़कर।
हृदय-मन, चित्त।
हृदयनिहितारम्भम्=(वि० संयोगम) हृदय में रखलिया है आरम्भ जिस का।
हृष्ट-प्रसन्न।
हृष्टचित्त=प्रसन्न मन।
हेतु-कारण।
हेमन्=सोना, सुवर्ण।
हैम-सोने का, सुनहरी।
ह्री=लज्जा।
ह्रीमूढ़ा=लज्जा की मारी, मूर्ख स्त्री।
हीर=हीरा।

॥ इति ॥